ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 01 जून 2025

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार, 01 जून 2025 से 07 जून 2025

ज्येष्ठ शु. 06 ● वि० सं०-2081 ● वर्ष 66, अंक 22, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 201 ● सृष्टि-संवत् 1,97,29,49,125 ● पृ.सं. 1-12 ● मूल्य - 5/- रु. ● वार्षिक शु. 300/- रु.

डी.ए.वी. कॉलेज जालंधर द्वारा महाविद्यालय के 107वें स्थापना दिवस पर हुआ यज्ञ

डी.ए.वी. कॉलेज जालंधर द्वारा महाविद्यालय के स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में यज्ञ का आयोजन किया गया। प्राचार्य डॉ. राजेश कुमार एवं पुस्तकालय अध्यक्षा प्रो. श्वेता आजाद ने यज्ञ में मुख्य यजमान की भूमिका निभाई। प्राचार्य डॉ. राजेश कुमार ने यज्ञ में उपस्थित सभी को डी.ए.वी. कॉलेज जालंधर के 107वें स्थापना दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ दीं। उन्होंने कहा कि "13 मई 1918 को डी.ए.वी. जालंधर का जो बीजवपन किया था, वह वटवृक्ष का रूप धारण कर चुका है। आज ऐतिहासिक दिन है जब हम डी.ए.वी.कॉलेज जालंधर के 107वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं।" आज हमारा यह कर्त्तव्य एवं जिम्मेदारी बनती है कि हम महाविद्यालय की प्रगति और श्रेष्ठता को और भी ऊँचाइयों पर ले जाएँ।

प्राचार्य महोदय ने बताया कि डी.ए.वी. कालेज जालंधर में उत्तर भारत का सबसे बड़ा पुस्तकालय है जिसमें कि पांडुलिपियाँ, रेयर बुक्स एवं बेहद पुरातन उपयोगी पुस्तकों का भंडार है। पुस्तकालय डिजिटल, स्वचालित एवं मल्टीमीडिया ज्ञान केंद्रों में से एक है। यह वेब आधारित ओपेक प्रदान करने वाला एकमात्र पुस्तकालय है।

प्रो. श्वेता ने यज्ञ का सुव्यवस्थित ढंग से आयोजन करने के लिए पुस्तकालय के सभी सदस्यों एवं पंडित बुद्धदेव शास्त्री द्वारा वैदिक रीति से हवन यज्ञ विधिवत् रूप से संपन्न करवाने के लिए आभार व्यक्त किया।

डी.ए.वी. हल्द्वानी के छात्रों ने आर्यसमाज मंदिर में मंत्रों द्वारा मचाई धूम

हल्द्वानी (उत्तराखण्ड) स्थित आर्य समाज मंदिर का 134वाँ वार्षिकोत्सव धूमधाम से मनाया गया, जिसमें आर्य समाज मंदिर द्वारा डीएवी हल्द्वानी विद्यालय के विद्यार्थियों को वेद गायन के लिए आमंत्रित किया गया। डी.ए.वी. विद्यालय के छात्र– छात्राओं ने वेद मंत्र गायन से सभी अतिथियों को मंत्रमुग्ध किया।

इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य समाज की युवा पीढ़ी को सनातन वैदिक पद्धति से अवगत कराना था, ताकि वे प्राचीन भारतीय परंपरा को जान एवं अपने भविष्य को श्रेष्ठतम बना सकें।

कार्यक्रम में देश के अन्य आर्यसमाज मंदिरों के गणमान्य प्रधान, मंत्रीगण, विद्वतजन उपस्थित थे। हल्द्वानी के महापौर श्री गजराज सिंह बिष्ट ने भी वर्तमान समय में युवा पीढ़ी में बढ़ रही गतिविधियों से बचने का एक ही उपाय बताया कि युवा पीढ़ी अपनी वैदिक परंपरा को जाने।

आर्य समाज मंदिर के प्रधान डॉक्टर विनय विद्यालंकार ने भारतीय वैदिक परंपरा पर प्रभावपूर्ण व्याख्यान दिया। उन्होंने कहा कि वर्तमान समय में यदि भारत को श्रेष्ठ बनाना है तो मातृ शक्ति एवं युवा पीढ़ी को आर्य परंपरा एवं वैदिक संस्कृति से जुड़ना होगा।

राज्य महिला उद्यमिता परिषद् की अध्यक्ष श्रीमती रेनू अधिकारी ने भी अपने व्याख्यान में डीएवी विद्यालय के नन्हें मुन्ने विद्यार्थियों की प्रशंसा करते हुए कहा कि यदि समस्त विद्यालयों में इसी प्रकार वैदिक पद्धति से विद्यार्थियों को अवगत कराया जाए तो आने वाले समय में आपराधिक प्रवृत्तियों में कमी आना संभव है।

डीएवी, जगजीतपुर, हरिद्वार में महात्मा हंसराज दिवस पर विशेष कार्यक्रम

डी.एवी सैंटेनरी पब्लिक स्कूल, लक्सर रोड, जगजीतपुर, हरिद्वार में महात्मा हंसराज जन्मोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। कार्यक्रम का शुभारंभ गायत्री मंत्र से हुआ तथा विद्यार्थियों ने एक बहुत सहपाठियों से स्वामी दयानंद के बताए मार्ग पर चलने का, वेदों की ओर लौटने का आह्वान कर रहे थे। कक्षा आठवीं की छात्रा आस्था मिश्रा ने वेद मंत्र **'वेदाहमेतम पुरुष महान्तम्'** मंत्र की व्याख्या की। स्वस्तिवाचन और शांति

सुंदर भजन *'चमका जहां में तू, बनकर अटल सितारा'* प्रस्तुत किया। इस प्रस्तुति ने उपस्थित जन समूह को भाव विभोर कर दिया।

विद्यालय के विद्यार्थियों ने महर्षि दयानंद के कर्मठ अनुयायियों में पंडित गुरुदत्त, लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानंद और महात्मा हंसराज की वेशभूषा में मंच पर सुशोभित हो अपने करण के मंत्रों से यज्ञ में आहुतियां दीं।

प्रधानाचार्य श्री मनोज कुमार कपिल ने सभी विद्यार्थियों को महात्मा हंसराज के बताए हुए आदर्शों पर चलने की प्रेरणा दी, चरित्र निर्माण पर बल देते हुए अपनी सभ्यता एवं संस्कृति से जुड़े रहने के लिए प्रेरित किया।

शांति पाठ और प्रसाद वितरण के बाद कार्यक्रम का समापन हुआ।

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 01 जून 2025 से 07 जून 2025

दोनों हाथों से भर-भरकर दे

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या:, महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात्।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यै:, आप्रयच्छ दाक्षिणादोत सव्यात्।।

अथर्व 7.26.8

ऋषिः **मेधातिथि:**। देवता **विष्णु:**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● (**विष्णो**) हे सर्वव्यापक परमात्मन्! (**दिव**) द्युलोक से (**उत वा**) और (**पृथिव्या:**) पृथिवी–लोक से [तथा] (**विष्णो**) हे विश्वान्तर्यामिन्! यज्ञ के देव! (**मह:**) महनीय (**उरो:**) विस्तीर्ण (**अन्तरिक्षात्**) अन्तरिक्ष–लोक से (**बहुभि:**)वहुत– से (**वसव्यै:**) ऐश्वर्य–समूहों से (**हस्तौ**) दोनों को (**पृणस्व**) भर ले। (**दक्षिणात्**) दाहिने हाथ से (**आ प्रयच्छ**) दान दे (**उत**) और (**सव्यात्**) बाएँ से [भी] (आ [प्रयच्छ]) दान दे।

● हे विष्णु! हे सर्वव्यापक! हे विश्वान्तर्यामिन्! हे विश्व–ब्रह्माण्ड के स्वामिन! तुम अपूर्व धनाधीश हो। विश्व के द्युलोक, अन्तरिक्ष–लोक और पृथिवी–लोक में जो धन बिखरा पड़ा है, वह सब तुम्हारा ही है। अतः तुम धन–कुबेर हो। एक और तुम धनपति हो ओर हम अकिंचन हैं। अतः हम चाहते हैं कि तुम अपने कोष में से दाहिने–बाएँ दोनों हाथों से भर–भरकर हमें दान दो। तुम्हारे रचे द्यु–लोक में प्रकाश का अनुपम पारावार भरा पड़ा है। वह प्रकाश तुम हमें भी प्रदान करो। तुम्हारे रचे विशाल अन्तरिक्ष–लोक में वायु और पर्जन्य का सागर उमड़ रहा है। उसमें से हमें भी प्राण–वायु और अमृतमय वृष्टि–जल प्रदान करो। तुम्हारे रचे पृथिवी–लोक से सुवण, रजत, ताम्र अयस, हीरे, मोती आदि ऐश्वर्यों की निधियाँ भरी हुई हैं। वे ऐश्वर्य तुम हमें भी प्रदान करो। अल्प मात्रा में नहीं, प्रचुर मात्रा में प्रदान करो, क्योंकि हम ऐश्वर्यमय जीवन जीने की ही साध लिये हुए हैं।

पर हे विश्वव्यापी देव! हम केवल इन भौतिक ऐश्वर्यों का ही पाकर सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहते। हम शरीरस्थ द्यु–लोक, अन्तरिक्ष–लोक और पृथिवी–लोक के ऐश्वर्यों को भी पाने के लिए आतुर हो रहे हैं। हमारा अन्नमय कोश ही पृथिवी–लोक है, जिसमें शरीर की त्वचा से लेकर अस्थि–पर्यन्त सब ढांचा आ जाती है। असका ऐश्वर्य है शारीरिक स्वास्थ्य और शारीरिक बल, जिसके बिना मनुष्य का जीवन–यापन,व्यान,उदान, समा, इन पांचों से तथा कर्मेन्द्रियों से मिलकर प्राणमय कोश बनता है। इसका ऐश्वर्य है प्रागण, अपानन आदि क्रियाओं का समुचित रूप से होते रहना तथा हस्त–पादादि कर्मेन्द्रियों को कार्य–क्षम बने रहना। मन और ज्ञानेन्द्रियों से मिलकर मनोमय कोश बनता है। इसका ऐश्वर्य है मन के माध्यम से ज्ञानेन्द्रियों का ज्ञान–प्राप्ति में सहायता होना तथा मन का सत्यसंकल्प करना। ज्ञानेन्द्रियों–सहित बुद्धि विज्ञानमयकोश कहलाता है। इसका ऐश्वर्य है ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान पर ऊहापोह करके निश्चयात्मक ज्ञान अर्जित करना। आनन्दमय कोश द्यु–लोक है, जहाँ हृदयपुरी में प्रतिष्ठित आत्मा के अन्दर ब्रह्म का वास है। इसका ऐश्वर्य है ब्रह्मानन्द की प्राप्ति। हे विष्णुदेव! तुम इन समस्त ऐश्वर्यों से भी भरपूर करने की कृपा करते रहो।

हे जगत्पिता! तुम निरैश्वर्य की अवस्था से पार करके हमें अधिकाधिक ऐश्वर्य प्रदान कर कृतार्थ करते रहो।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

तत्त्वज्ञान

● महात्मा आनन्द स्वामी

श्रीराम की व्यथा कथा का वर्णन करने के बाद उनकी वैराग्य से भरी प्रकृति का वर्णन स्वामी जी कर रहे थे। लक्ष्मी, चिन्ता, धन सम्पत्ति की अधिकता, अल्पायु, अहंकार, तृष्णा आदि का चिन्तन कर श्रीराम मानव–देह से उकता गए है। संसारी लोग दयनीय अवस्था में है।

बुद्धि ने सभी के अन्तःकरण को व्याकुल कर रखा है। वैराग्य का कहीं पता नहीं। आत्मदर्शन करने की शक्ति रजोगुण की बलि चढ़ गई है। आयु समाप्त होने को है। सत्संगति का पता नही। सन्तोष, करुणा कहीं दिखायी नहीं देते। अज्ञान में जन्म बिनष्ट हो रहा है। शान्ति कही रही नहीं। ऐसे में निवृत्ति लाभ हो तो कैसे ?

श्रीराम का प्रश्न है कि संसार रूपी कीचड़ में लिप्त होने से बचने का क्या उपाय है? उन्होंने सामने बैठे ऋषि विश्वामित्र और गुरु वसिष्ठ से उस तत्त्व का उपदेश करने की प्रर्थाना की जिससे जगत् के पूर्वापर को जानकर आदि और अन्त में अवशिष्ट रहने वाले पारमार्थिक तत्त्व को जाना जा सके।

श्रीराम ने कह दिया तत्त्वज्ञान तक पहुंचने वाली युक्ति मुझे प्राप्त नहीं होती तो–

न किंचिदपि वांछामि देह त्यागादृते मुने।

..... अब आगे

तत्त्वज्ञान का अधिकारी कौन ?

तत्त्वज्ञान प्राप्त किए बिना न तो सांसारिक दुःखों से छुटकारा हो सकता है और न ही शान्ति प्राप्त हो सकती है। तत्त्वज्ञान की ऊँची मंजिल तक पहुँचने से पूर्व यह आवश्यक है कि पहले वहाँ तक पहुँचने का अपने–आपको अधिकारी बनाया जाए। वास्तविक तत्त्व क्या है ? यह तो तत्काल वर्णन हो सकता है, परन्तु जब तक बुद्धि उसे ग्रहण करने योग्य न बने तब तक उसके वर्णन का कोई लाभ न होगा। पीछे जितने अध्याय लिखे गए हैं, उनका प्रयोजन यही है कि किसी प्रकार हम उस अवस्था में पहुँच जाएँ जहाँ पहुँचकर तत्त्व के वास्तविक रूप को भली–भाँति समझ सकें।

प्रारम्भ में यदि वासना–क्षय तथा मन के लय का वर्णन हुआ तो इसीलिए क्योंकि मन की एकाग्रता के बिना इस तत्त्व की समझ आ ही नहीं सकती; फिर शरीर को स्वस्थ रखने के लिए आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य की बात छेड़ी तो इसी उद्देश्य के लिए। प्राणायाम तथा ध्यान का प्रसंग छिड़ा तो इसी कारण से। श्रेय तथा प्रेय दो मार्गों की कथा आई तो इसी प्रयोजन से। शरीर और लोक के तत्त्वों की समानता का वर्णन भी इसीलिए हुआ। सृष्टि–तत्त्व और सृष्टि–विज्ञान को बीच में लाना भी इसीलिए आवश्यक समझा गया तथा भगवान् राम के हृदय की व्यथा की गाथा भी इसीलिए सुनाई गई ताकि ज्ञान, अभ्यास एवं वैराग्य द्वारा धीरे–धीरे मनुष्य तत्त्वज्ञान को प्राप्त करने का अधिकारी बने और इस अध्याय में कुछ और मर्म की बातें इसीलिए लिखी जा रही हैं ताकि हम पूर्णरूपेण अधिकारी बन सकें।

तत्त्वज्ञान का मनुष्यमात्र को अधिकार

वैसे तत्त्वज्ञान का अधिकार मनुष्यमात्र को है, इसमें किसी के लिए कोई रुकावट नहीं। गंगातट पर आज कितना शीतल, सुन्दर पवन चल रहा है ! इस पवन का सेवन करने के सभी अधिकारी हैं, परन्तु जिनके शरीर दुर्बल हैं, शीत को सहन करने की शक्ति नहीं रखते, ज्वरग्रस्त हैं, पहले ही जिन्हें निमोनिया हो रहा है, कासक्षय के जो रोगी हैं, वे तो इस सुन्दर शीतल पवन के सेवन का अधिकार नहीं रखते। इसी प्रकार तत्त्वज्ञान का अधिकार तो सबको है, परन्तु इसको प्राप्त करने के पात्र वे होंगे जो सर्वथा स्वस्थ हैं, मन तथा आत्मा जिनका तत्त्वज्ञान की शीतलता को सहन करने के योग्य बन चुका है क्योंकि यह तत्त्वज्ञान तो फिर मनुष्य को परमानन्द तक पहुँचा देता है।

तत्त्वज्ञान के चार साधन

तत्त्वज्ञान विकृतिरूप प्रकृति से छुटकारा दिलाकर मोक्ष–पद प्राप्त करा सकता है। श्री शंकराचार्य से जब यह पूछा गया कि मोक्ष के साधन क्या हैं ? तो इसके अर्थ यही थे कि तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के कौन–से साधन हैं ? इसके उत्तर में श्री शंकराचार्य ने ये चार साधन बतलाए थे :

(1) नित्यानित्यवस्तुविवेकः।
(2) इहामुत्रार्थफलभोगविरागः।
(3) शमदमादिषट्कसम्पत्तिः।
(4) मुमुक्षुत्वं चेति।

1. नित्य और अनित्य पदार्थों का भिन्न–भिन्न ज्ञान अर्थात् आत्म और अनात्म वस्तुओं का विवेक।

2. इस लोक के और परलोक के और उनसे होनेवाले फलों में वैराग्य अर्थात् संसार–यात्रा श्रेय मार्ग से करते हुए या निःस्वार्थ भाव से निष्काम होकर प्रेय–मार्ग पर चलते हुए सर्वथा वैराग्य वृत्ति बना लेना।

3. शम, दम, उपरति, तितिक्षा श्रद्धा और समाधान, इन छः साधनों का सम्पादन।

4. मोक्षपद की इच्छा अर्थात् 'मैं सांसारिक दुःखों से सर्वथा छुटकारा पाकर मुक्त हो जाऊँ', जब ऐसी तीव्र तथा उत्कट इच्छा हो जाती है तो उसे मुमुक्षु कहा जाता है।

(1) विवेक

सबसे पहला साधन है नित्यानित्यवस्तुविवेक। नित्य वस्तु केवल तीन हैं – (1) ईश्वर, (2) जीव, (3) प्रकृति; शेष सब दृश्यमान संसार अनित्य है। श्री कृष्ण भगवान् ने भी गीता के अध्याय 13 में तीन ही तत्त्व नित्य कहे हैं। पहले श्लोक में परमात्मा और दूसरे में प्रकृति तथा जीवात्मा :

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।
17।।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धयनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।
16।।

'वह ब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति एवं माया से अति परे कहा जाता है तथा वह परमात्मा बोधस्वरूप और जानने के योग्य है एवं तत्वज्ञान से प्राप्त होनेवाला और सबके हृदय में स्थित है।। 17।।

प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया और जीवात्मा– इन दोनों को तू अनादि जान और राग–द्वेषादि विकारों को तथा त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थों की प्रकृति से ही उत्पन्न हुए जान'।। 19।।

इसके अतिरिक्त गीता के अध्याय 15 में फिर यह कहा है :

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।
17।।

'उन दोनों से उत्तम पुरुष तो अन्य ही है कि जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण–पोषण करता है एवं **'अविनाशी परमेश्वर और परमात्मा'** ऐसा कहा गया है।'

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।
18।।

'मैं नाशवान् जड़वर्ग क्षेत्र से तो सर्वथा अतीत हूँ और माया में स्थित अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूँ, इसलिए लोक में और वेद में भी पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ।'

श्वेताश्वतरोपनिषद् के ऋषि ने तो बड़े सुन्दर ढंग से ईश्वर, जीव और प्रकृति के नित्य, अनादि होने का वर्णन किया है। पहले ही अध्याय के 10वें वाक्य में यह आदेश है :

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः,
क्षरात्मानादीशते देव एकः।
तस्याभिध्यानाद्योजनातत्त्वभावाद्
भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः।।
10।।

'प्रकृति परिणामिणी (बदलती रहनेवाली) है। हर (पुरुष) अमृत है और अपरिणामी है। इन दोनों प्रकृति और पुरुष पर एक देव ईशन (शासन) करता है। उस एक के ध्यान से, उसमें जुड़ जाने से, तन्मय हो जाने से फिर अन्त में सारी माया हट जाती है (सब धोखे मिट जाते हैं)।'

फिर 12 वें वाक्य में यह आदेश है :

एतज्ज्ञेय नित्यमैवात्मसंस्थं,
नातः परं वेदितव्यं हि किंचित्।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा,
सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्।।
12।।

'इसको जानो जो सदा तुम्हारे आत्मा में वर्तमान है; इससे परे कुछ जानने योग्य नहीं है। भोक्ता (जीव), भोग्य (प्रकृति और उसके कार्य) और प्रेरक (ईश्वर) को समझकर सब साफ हो जाता है। यह त्रिक् ब्रह्म–सम्बन्धी है।' इन दोनों स्थलों पर श्वेताश्वतर ऋषि ने ईश्वर, जीव, प्रकृति, तीनों का वर्णन भोक्ता, भोग्य और प्रेरक शब्दों से स्पष्ट किया है।

अविद्या के चार रूप

अब जो लोग विवेक से काम नहीं लेते, वे अनित्य पदार्थों में नित्य और नित्य में अनित्य भावना करके भटकते हैं। विवेक के स्थान में वे अविद्या के जाल में फँस जाते हैं। अविद्या का लक्षण ही यह है :

अनित्याशुचिदुःखानां नात्मसु
नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।।
यो. द. साधनपाद 5।।

'अनित्य, अपवित्र, दुःख और अनात्मा में नित्य, पवित्र सुख और आत्मा की प्रतीति ही 'अविद्या' है।'

अनित्य = यह समझ लेना कि मेरा शरीर नित्य रहेगा, यह दृश्यमान सृष्टि सदा से है और सदा इसी प्रकार बनी रहेगी, मैंने अपना जो वैभव बनाया है, अपनी पार्टी बनाकर जो राज्य स्थापित किया है, जो सम्बन्धी, मित्र और सहायक बनाए हैं, ये इसी प्रकार मेरे बने रहेंगे – ऐसा जो मिथ्या ज्ञान है, यह अविद्या ही है। यह अविद्या ही सारे कष्टों–क्लेशों की जननी है, जिसमें **सबसे पहला भ्रान्त विचार यह है कि अनित्य को नित्य समझ लिया जाए।**

अशुचि = अपवित्रता ही अशुचि है। अपवित्र वस्तुओं को पवित्र समझ बैठना और जो पवित्र हैं उनको अपवित्र, यह अविद्या का दूसरा रूप है। अब देखिए, यह मानव–शरीर मल–मूत्र ही का समुदाय तो है ! परन्तु इसे पवित्र समझ लिया जाता है और इसकी पालना के लिए जीवों का वध करना पड़े तो इस वध को भी अच्छा समझा जाता है। असत्य भाषण से यदि पालना होती हो तो झूठ बोलना आवश्यक समझ लिया जाता है। ऐसे ही सत्यविद्या, ब्रह्मविद्या, सत्संग, प्रभु भजन और परोपकार को ढोंग समझकर इन पवित्र वृत्तियों के विरुद्ध भी कथन किया जाता है। जितेन्द्रियता तो एक अत्यन्त पवित्र तप है। इस पर भी हास्य किया जाता है और जितेन्द्रियता को असम्भव तथा ***'बर्थ कण्ट्रोल'*** जैसे गन्दे कार्य को अच्छा ही नहीं समझा जाता अपितु उसका प्रचार भी किया जाता है। चोरी, हिंसा, चोरबाज़ारी अथवा भ्रष्टाचार से कमाया धन अपवित्र है; परन्तु इन्हीं साधनों से कमाए धन को अच्छा समझना अन्याय, एक महापाप और निकृष्ट अपवित्र वृत्ति है क्योंकि अन्याय से अपना स्वार्थ सिद्ध करना, इसी को पवित्र जान लेना, किसी का भी अधिकार छीनना अपवित्र कार्य है।

किसी देश या प्रदेश को राक्षसी शक्ति, बहुमत या धोखे से अपने अधिकार में ले आना, अपनी गुटबन्दी या पार्टी का बल बढ़ाने के लिए अत्याचार को कानून का रूप देकर मनुष्यों को कारागार में डाल देना अत्यन्त घृणित वृत्ति है। पर इसी वृत्ति को देश के लिए बहुत लाभदायक, आवश्यक और पवित्र समझना, इसी प्रकार के और कार्यों को पवित्र मानकर उन्हीं में प्रयत्नशील रहकर अपने–आपको कृतकृत्य समझना यह अविद्या का दूसरा रूप है।

अविद्या के इस रूप ने आज इतना भयंकर रूप धारण कर लिया है कि हर बुरे व्यसन को अच्छा और अच्छे को बुरा समझा जाने लगा है। मद्यपान आज की समाज –सोसायटी में सभ्यता का चिह्न है। ताश खेलना, सिनेमा देखना, झूठ – मक्कारी से धन एकत्र करना बुद्धिमत्ता है। मद्यपान, मांसभक्षण, ताश, सिनेमा से जो दूर रहता है वह सोसायटी के अयोग्य और बुद्धू समझा जाने लगा है। यह अविद्या के रूप की पराकाष्ठा है।

विद्या का तीसरा रूप दुःख को सुख और सुख को दुःख समझना है। जितने विषय हैं वे सब दुःख ही हैं, परन्तु विषयों की पूर्ति के लिए मानस इतना लिप्त हो जाता है कि उनसे निकलना अत्यन्त कठिन हो जाता है। तृष्णा, काम, क्रोध, मोह, लोभ, शोक, ईर्ष्या, द्वेष आदि ऐसे विषय हैं जिनमें पड़कर मानव गीली लकड़ी की तरह सदा जलता ही रहता है, फिर भी वह इन्हीं के पीछे पड़ा रहता है कि अब सुख मिल जाएगा, परन्तु सुख के स्थान पर दुःख ही पल्ले पड़ता है।

क्रमशः

सार्वदेशिक आर्य वीरांगना दल का शिविर दिल्ली में

सार्वदेशिक आर्य वीरांगना दल का वार्षिक राष्ट्रीय शिविर 2025 इस बार दिल्ली में दिनांक 7 जून से 15 जून 2025 तक संस्कार शिक्षा कुंज स्कूल, गोंडा रोड, गली नं. 9 बी, स्वतन्त्र नगर, नरेला, दिल्ली–110040 (मोबाईल नं. 9315254900) में आयोजित किया जा रहा है। इसमें भाग लेने के लिए 13 वर्ष से अधिक आयु की आर्य वीरांगनाएँ दिनांक 26 मई 2025 तक अपने नाम निम्नलिखित नम्बरों पर देवें ताकि व्यवस्था सुचारू रूप से हो सके।

साध्वी डॉ. उत्तमा यति
प्रधान संचालिका
9672286863

मृदुला चौहान
संचालिका
9810702760

आरती खुराना
सचिव
9910234595

नीरज कुमारी
कोषाध्यक्ष
8920208536

जातकर्म संस्कार में भी चार मन्त्रों से तीन समिदाधान

● ब्र. राजेन्द्रार्यः

{हाल ही में एक स्थान पर हुए आर्य सम्मेलन में यज्ञ में चार मन्त्रों की जगह यजुर्वेद के तीन (3–1 से 3) मंत्रों से समिदाधान की प्रक्रिया सम्पन्न की गई। इसके चलते सोशियल मीडिया पर कुछ विचार विनिमय आरम्भ हो गया। स्वामी दयानन्द पण्डित 'संस्कार विधि' में लिखित प्रक्रिया को ही मानना उचित है परोपकारिणी सभा द्वारा नियत की गई विद्वानों की समिति का यही निर्णय है। इस विषय में ब्र. राजेन्द्र आर्य जी का यह लेख आर्यजगत् 5 अक्तूबर से 11 अक्तूबर 2008 के अंक में छपा था। पाठकों की सेवा में पुनः प्रकाशित कर रहे हैं –सम्पादक}

परोपकारी पाक्षिक पत्रिका प्रथम जून 2008 के अङ्क में वेदों एवं कर्मकाण्ड विषय के अधिकारिक विद्वान् श्रद्धेय डॉ. वेदपाल जी का विद्वत्तापूर्ण लेख समिदाधान मन्त्र – 3/4 प्रकाशित हुआ है। सम्माननीय डॉ. वेदपाल जी ने अपने लेख में महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत संस्कार–विधिः के जातकर्म पृ. 49 में – 'पृष्ठ 21 में लिखे **प्रमाणे अयन्त इध्मात्मा.** मन्त्रों से वेदी में चन्दन की समिदाधान करें' – तीन मन्त्रों से समिदाधान का उल्लेख है, ऐसा लिखते हैं।

उपर्युक्त पंक्तियाँ आदरणीय श्री डॉ. वेदपाल जी ने संस्कार–विधिः के किस संस्करण को प्रामाणिक मानकर लिखी हैं ऐसा लेख से स्पष्ट नहीं हो सका है। मेरे व्यक्तिगत पुस्तकालय में संस्कार–विधिः के जो संस्करण उपलब्ध हैं उनमें आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली {दिसम्बर –1993,} तथा आर्य प्रकाशन–814 कूण्डेवालान अजमेरी गेट दिल्ली {1997} से लेखक की पंक्तियों में लगभग समानता है। इन दोनों प्रकाशकों की संस्कार–विधिः में भी लिखा है– पृष्ठ 23 में लिखे प्रमाणे **"अयन्त इध्म"** 3 मन्त्रों से वेदी में चन्दन की समिदाधान करे। परन्तु संस्कार–विधिः के सामान्य प्रकरणम् पृष्ठ 23 पर महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखते हैं–" जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा ऊपर लिखित पलाशादि की तीन लकड़ी आठ–आठ अंगुल की घृत में डुबा, उनमें से एक–एक निकाल नीचे लिखे एक–एक मन्त्र से एक–एक समिधा को अग्नि में चढ़ावें। वे मन्त्र ये हैं

ओं अयं त इध्म. इस मन्त्र से एक, **ओं समिधाग्नि दुवस्यतः** इससे और **सुसमिद्धाय.** इस मन्त्र से अर्थात् इन दोनों मन्त्रों से दूसरी, **तन्त्वा.** इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें।

सामान्य प्रकरणम् से स्पष्ट हो रहा है कि जातकर्म के स्थल में भी चार मन्त्रों से ही तीन समिदाधान का उल्लेख है न कि 3 मन्त्रों से समिदाधान का। संस्कार–विधिः की भाषा में सम्पादकों द्वारा समय–समय पर कैसे–कैसे परिवर्तन किये गये हैं, यहाँ पर प्रमाण स्वरूप उद्धृत हैं–

संस्कार चन्द्रिका (संस्करण 2050, 1993 ई.) लेखक : श्री पं. भीमसेन शर्मा एवं पं. **आत्माराम अमृतसरी**, प्रकाशक– सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा 3/5 महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान– नई दिल्ली–2, सम्पादक : **डॉ. सच्चिदानन्द शास्त्री जी** जातकर्म के स्थल पर लिखते हैं– **'ऐसा बोल के आसन पर बैठ के पूर्व लिखे प्रमाणे अयन्त इध्म इत्यादि तीन मन्त्रों से वेदी में चन्दन की समिदाधान करें।'** जबकि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, रामलीला मैदान– नई दिल्ली से ही प्रकाशित संस्कार विधिः (संस्करण संवत् 2042) में लिखा है–

'बोल के आसन पर बैठ के पृष्ठ 32 में लिखे प्रमाणे "अयन्त इध्म" 3 (=4) मन्त्रों से वेदी में चन्दन की समिदाधान करे।'

डॉ. सच्चिदानन्द शास्त्री जी ने ***संस्कार–विधिः*** के इस स्थल में ***संस्कार चन्द्रिका*** में अपनी तरफ से **'ऐसा'** शब्द पूर्व में जोड़ा तथा '3 के बाद (= 4)' लिखा था उसे हटा दिया। यही ग़लती (= 4) हटाने की ***आर्षसाहित्य प्रचार ट्रस्ट एवं आर्य प्रकाशन कूण्डेवालान*** के सम्पादकों ने भी की है। श्रीमती परोपकारिणी सभा, दयानन्द आश्रम केसरगंज, अजमेर से प्रकाशित दयानन्द ग्रन्थमाला– द्वितीय खण्ड (संस्करण संवत् 2040) में **जातकर्म प्रकरणम्** में भी लिखा है– **'बोल के आसन पर बैठ के पृष्ठ 22 में लिखे प्रमाणे "अयन्त इध्म" 3 (= 4) मन्त्रों से वेदी में चन्दन की समिदाधान करे।'**

ऋषि दयानन्द प्रणीत ग्रन्थों के सिद्धान्तों में हठ एवं दुराग्रह के कारण भी कुछ विद्वानों ने परिवर्तन किये हैं। यथा श्री इन्द्रदेव यति, कुलपति – आदर्श गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ–शाही, जिला–पीलीभीत (उ. प्र.) ने अपनी 'संस्कार पद्धति', पूर्वार्द्ध भाग के सामान्य प्रकरण के समिदाधान मन्त्रों एवं घृत की पाँच आहुति से **"ओम् अयं त इध्म"** मन्त्र को हटा दिया है। उनका तर्क विचित्र है– **अयं त इध्म.** यह वेदमन्त्र नहीं हैं अल्पकालीन। इससे समिदाधान कभी किसी ने नहीं किया अतः '**अयं त इध्म.** से समिदाधान नहीं चढ़ानी चाहिये।'

संस्कारविधि के सामान्य प्रकरण में **'अयंत इध्म.'** मंत्र में पाँच आज्याहुति लगाना, बिल्कुल निरर्थक और अवैधानिक है। क्योंकि–

क–**'अयं त इध्म.'** से पाँच आहुति लगाना किसी भी संस्कार अथवा दैनिक हवन आदि में कहीं भी विशेष आदेश न होने से उचित नहीं है।

ख–होम का आरम्भ आघारावाज्यभागाहुति से होता है यदि उससे पहले **"अयं त इध्म."** से पाँच आहुति लगा ली तो आदि बिगड़ जावेगा। अतः **'अयं त इध्म.'** से पाँच आहुति नहीं लगानी चाहिये।

ग–सूचीपत्र में ऋषि द्वारा पंचाज्याहुति का उल्लेख भी न होने से यह मंत्र स्पष्टतया प्रक्षिप्त है।

विद्वान् लेखक डॉ. वेदपाल जी ने अपने लेख में महर्षि से पूर्व आश्वलायन गृह्यसूत्र, जैमिनि गृह्यसूत्र, भारद्वाज गृह्यसूत्र एवं हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र के शास्त्रीय प्रमाणों को उद्धृत कर सिद्ध कर दिया है कि–**अयं तं इध्म.** मन्त्र से समिदाधान का विनियोग उचित है।

डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार अपने ग्रन्थ **संस्कारचन्द्रिका** (संस्करणः 1986) जातकर्म संस्कार स्थल में लिखते हैं– 4 मन्त्रों से वेदी में चन्दन की 'समिदाधान' **(ओम् अयन्त इध्म आत्मा+समिधाग्नि दुवस्यतसुसमिद्धाय शोचिसे+तन्त्वा समिद्भिः**, पृष्ठ 71–73) करे।

श्री पं. बाला जी विट्ठल गांवस्कर ने मराठी भाषा में **'वेदोक्त–संस्कार–प्रकाश'** ग्रन्थ की रचना की। जिसका प्रथम संस्करण संवत् 1938 में प्रकाशित हुआ। ग्रन्थकार ने जातकर्म संस्कार विधिः के अन्तर्गत **"ऊँ अयन्त इध्म."** (पृष्ठ 55) मन्त्र से मुख्य रूप से चन्दन की समिधाधान करे का विधान किया है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने **संस्कार विधिः** ग्रन्थ का प्रथम संस्करण विक्रम संवत् 1932 में लिखा था तथा पुनः संशोधित संस्करण विक्रम संवत् 1940 में छपवाया था। पं. युधिष्ठिर मीमांसक जैसे प्रसिद्ध विद्वान् अनुसन्धानकर्ता से भी संस्कार–विधिः के हस्तलेखों को समझने में उस समय भूल हो गई। इसीलिए वह **'वेदोक्त–संस्कार–प्रकाश'** (मूल मराठी ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद) संस्करण वि.सं. 2042 में सामान्य–संस्कार–विधि प्रकरण के **ऊँ अयन्त** मंत्र की टिप्पणी में लिखते हैं–ग्रन्थकार ने **'अयन्त इध्म आत्मा'** मन्त्र से समिधा डालने का विधान आश्वलायन गृह्य सूत्र के अनुरूप किया है। ऋ.द. ने संस्कार विधिः में पहले इस मन्त्र का निर्देश न करके कात्यायन श्रौतसूत्र के अनुसार **समिधाग्नि. सुसमिद्धाय. तन्त्वासमिद्भ.** तीन मन्त्रों से 3 समिधा देने का विधान किया था। तत्पश्चात् हस्तलेख के हाशिये पर **अयन्त इध्म आत्मा.** मन्त्र बढ़ाया गया। यह वृद्धि सम्भवतः इस ग्रन्थ को देखकर की गई है, परन्तु ऋ.द. ने जब इस मन्त्र का समिधाओं की आहुति के पश्चात् पाँच घृताहुतियों में विनियोग किया है तब इस मन्त्र को यहाँ बढ़ाना युक्तिसंगत नहीं है। इस पर विद्वानों को विचार करना चाहिये।'

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आश्विन वदी 8 सोमवार संवत् 1940 (24 सितम्बर 1883) के पत्र में मुंशी समर्थदान, प्रबन्धकर्त्ता, वैदिक यंत्रालय को लिखा था– "आज संस्कार–विधिः के पृष्ठ 1 से लेके 47 तक भेजते हैं संभाल के छपवाना।"

– पत्र विज्ञापन भाग 2, पृष्ठ 792।

पुनः आश्विन वदी 13 शनिवार संवत् 1940 (29 सितम्बर 1883) के पत्र में ऋषि ने लिखा–

– आश्विन वदी 8 सोमवार संवत् 1940 को संस्कार–विधिः के पृष्ठ 1 से 47 तक भेजे हैं पहुँचे होंगे।' पत्र विज्ञापन भाग 2, पृष्ठ 807।

इससे एक बात तो यह स्पष्ट हो जाती है कि संस्कार–विधिः के हस्तलेखों में संशोधन ऋषि ने अपने हाथ से किये हैं। तथा **'अयं त इध्म आत्मा.'** मन्त्र बाद में प्रक्षेप नहीं किया गया है। प्रेस कापी में पृष्ठ 3 से 19 तक सामान्य प्रकरण है। **"अयं त इध्म आत्मा."** मन्त्र विषयक पाठ इन्हीं 3–19 पृष्ठों में पृष्ठ 15 पर है। असली कापी के पृष्ठ 16, 29, 32, 34, 41 में '3–19 पर्यन्त विधि करके ऐसा स्पष्ट लेख मिलता है।

असली रफ कापी में **'अयन्त इध्म आत्मा.'** इस मन्त्र से समिधा डालने का विधान आगे के संस्कारों में निम्न प्रकार मिलता है

(क) असली कापी पृ. 20 '.............

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

आर्यसमाज ने हिन्दू जाति के लिए क्या किया ?

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

सनातन धर्म और आर्यसमाज के प्रचलित मतभेदों के रहते हुए भी यह संभव है कि दोनों मिलकर संस्कृति की उन्नति में लग जावें। जब उद्देश्य एक होता है तो साथ काम करने का कोई न कोई मार्ग निकल आता है और छोटे मतभेद आप ही आप दूर हो जाते हैं। कल्पना कीजिए कि आर्यसमाजी और सनातन धर्मी दो सज्जन ईश्वर प्राप्ति के लिए चलते हैं। उनका उद्देश्य एक है। सनातन धर्मी मूर्तिपूजक है और आर्य समाजी मूर्तिपूजक नहीं। अब यदि सनातन धर्मी मूर्तिपूजा करके ईश्वर की प्राप्ति करने में सफल हो जाए तो उसको बधाई है। यदि न हो तो वह स्वयं मार्ग को छोड़ देगा। झगड़ा इसलिए होता है कि ईश्वर–प्राप्ति की इच्छा तो है नहीं। बिना उद्देश्य के विवाद खड़ा किया जाता है। यदि एक आर्यसमाजी संध्या नहीं करता तो उसका मूर्तिखण्डन करने से क्या लाभ? जो पानी में घुसना नहीं चाहता और खाट पर बैठे–बैठे तैरने के विषय में विवाद करता है उससे तो किसी को कुछ लाभ हो नहीं सकता। सस्ती मुक्ति चाहते हैं। ऐसी सस्ती मुक्ति चाहने वालों के लिए ठग भी मिल जाते हैं। कोई किसी **'नाम'** का जाप बता देता है। कोई कान में मंत्र फूँक कर गुरु बन बैठता है, कोई अनोखे तमाशे दिखाकर लोगों को वश में करना चाहता है और लोग भी कैसे भोलेभाले हैं कि झट से किसी न किसी के जाल में फँस ही जाते हैं। वे यह नहीं पूछते कि जो सच्चा योगी या ईश्वर भक्त होगा वह धन के लिए तमाशा क्यों दिखाता फिरेगा ? जो सच्चा साधु होगा वह विषय–भोग या कांचन वा कामिनी के फंदे में क्यों फँसेगा।

आर्यसमाज और सनातन धर्म में एक बड़ा भेद दृष्टिकोण का है। उसका विचार कर लेना चाहिए। जब स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज स्थापित किया तो उन्होंने कहा कि आजकल जिसको हिन्दू–धर्म कहते हैं वह प्राचीन सनातन वैदिक धर्म से विपरीत है। इसमें बहुत कुछ दोष मिल गए हैं। इनको निकाल कर शुद्ध वैदिक–धर्म को ग्रहण करना चाहिए। लकीर के फकीर पंडितों को यह बात पसन्द नहीं आई। वे पुरानी प्रथाओं को बदलना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने आर्यसमाज के विरोध में **'सनातन धर्म सभा'** नाम की संस्थाएँ स्थापित कीं और अपना नाम **सनातन धर्म** रखा। परन्तु पिछले पचहत्तर वर्षो (1875 से 1950) में आर्यसमाज ने जो काम किया उससे सिद्ध होता है कि सनातन धर्मियों ने भी उन परिवर्तनों को मान लिया जो आर्यसमाजी करना चाहते थे। अर्थात् उनको अपने मार्ग से हट कर आर्य समाज के मार्ग का अवलम्बन करना पड़ा। जैसे आजकल कोई सनातनधर्मी यह नहीं मानता कि जो दस वर्ष की कन्या का विवाह न करे वह नर्क को जाता है या स्त्रियों को वेद या अन्य विद्यायें नहीं पढ़ानी चाहिएँ या बालविधवा का विवाह नहीं करना चाहिए या ईसाई मुसलमानों की शुद्धि करना पाप है या समुद्र की यात्रा नहीं करनी चाहिए या अछूत जाति को नहीं उठाना चाहिए। या 'नमस्ते' करना बुरा है। पहले काल में इन्हीं बातों पर आर्यसमाज और सनातनधर्म के लोगों में झगड़े होते थे। अब तो दोनों एक ही बात को मानते हैं। सच्ची बात तो यह है कि जो बातें स्वामी दयानन्द ने कहीं थीं वे सब ठीक थीं। उनके माने बिना काम तो चल नहीं सकता। एक न एक दिन उसी मार्ग पर आना पड़ेगा। यदि जल्दी मार्ग पर आ गए तो अच्छा है। देर करने में बहक जाने का डर है।

सनातनधर्मी लोग अब तक समझते थे कि हिन्दू जाति पर जो आपत्तियाँ आईं वे कलियुग के कारण थीं। वे कहा करते थे कि यह युग का प्रभाव है इसलिए वह पुरुषार्थ को छोड़ बैठे थे। जिन जातियों में पुरुषार्थ था वे आगे बढ़ गईं। ये कलियुग की ही रट लगाते रहे। स्वामी दयानन्द ने कहा कि सनातन धर्म तो कलियुग या किसी विशेष युग के अधीन नहीं होता, जो कलियुग के प्रभाव में फँस जावे वह सच्चा सनातन धर्म नहीं है, अतः पुरुषार्थी बन कर आगे बढ़ो।

कुछ लोग **'भाग्य'** और **'ईश्वर–इच्छा'** का बहाना कर हाथ पर हाथ रखे बैठे हुये थे। उनका बहाना था कि यदि हमारी तकदीर बुरी न होती तो ऐसा क्यों होता ? ईश्वर की ऐसी ही इच्छा थी। स्वामी दयानन्द ने बताया कि ईश्वर की कभी यह इच्छा नहीं हो सकती कि तुमको दुःख मिले। ईश्वर तो सब का मित्र है सबके हित की बात करता है, जो जैसा करता है, वह वैसा पाता है। फल कर्म के अधीन है। कर्म फल के अधीन नहीं। पुरुषार्थ से भाग्य बनता है। जो आलसी बन कर बैठा है उसको. ईश्वर आलस के बदले अच्छा फल नहीं दे सकता। इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने हिन्दू जाति को कलियुग की गुलामी से छुड़ाया, भाग्य की जंज़ीरों से मुक्त किया, नक्षत्रों के जाल से निकाला, कर्म के सिद्धान्त का महत्व समझाया, पुरुषार्थ का मंत्र पढ़ाया। अंधविश्वास को हटा कर विद्या और ज्ञान का मार्ग दिखाया। सबसे बड़ी बात स्वामी दयानन्द ने यह कही कि तुम **मेरे या किसी एक आदमी के कहने पर मत चलो। सत्य की खोज करते रहो और असत्य को त्यागने और सत्य को मानने के लिए सदा उद्यत रहो। यही सच्ची ईश्वर भक्ति है, यही सच्चा सनातन धर्म है, इसी से सबका कल्याण होगा।**

'आर्यसमाज और सनातन धर्म' से साभार

मृत्यु कब-कैसे आती है ?

● भद्रसेन

जब किसी का देहान्त होता है। तब अनेक प्रकार की जिज्ञासाएँ उठती हैं। जैसे कि सामान्य परिचय होने पर इस की आयु क्या थी? क्या रुग्ण चल रहे थे? मृत्यु कब–कैसे हुई ? जब कुछ बात सामने आती है तो आयु, अवसर, कारण, स्थान, लिखी आदि को लेकर अनेक विविध घटनायें, कहानियाँ सुनाते हैं। जिससे एक के बाद एक प्रश्न उभरता है। इन सबको सामने रख कर यजुर्वेद का एक मन्त्र सबका समाधान सुझाते हुए कहता है– **अश्वत्थे वो निषदनम्, पर्णे वो वसतिष्कृता। गोभाज इत् किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्।**

संसार में रहने वालो ! इस जगत् की जितनी भी व्यवहार में आने वाली वस्तुएँ हैं– भवन–वस्त्र–बरतन–भोज्यपदार्थ–पुस्तक–यन्त्र–यान आदि। वे सारी की सारी भौतिक (धरती–जल–अग्नि–वायु–आकाश नामक भूतों से बनी हुई) होने के कारण **अश्वत्थ**=परिवर्तनशील हैं। उनमें हर समय बदलाव आता रहता है। तभी तो वे घिस–घिस कर पुरानी पड़ जाती हैं। कई बार आग लगने पर या टक्कर लगते ही टूट–फूट जाती हैं। कोई भी चीज़ पहले जैसी नहीं रहती। अतः तुम्हारा बैठना–ऐसी दुनिया में है।

केवल बर्ताव की वस्तुओं की ही यह स्थिति नहीं, इसके साथ **'पर्णे वो वसतिष्कृता'**=तुम्हारा बसेरा भी पर्ण=पत्ते जैसे देह में है। यही शरीर भी शीर्ण–जीर्ण–क्षीण होने वाला है। तभी तो एक शिशु पहले किशोर होता है और फिर युवा अवस्था के बाद धीरे–धीरे बूढ़ा–कमज़ोर होने लगता है। मानव देह धारियो! जिस तन को हम कपड़े पहनाते, अनेक प्रकार से सजाते हैं, वह अस्थिर काया भी प्रकृति का ही एक पड़ाव है। अतः समय के साथ बदलने लगता है। पेड़ के पत्ते की तरह यह कब गिर जाए इस का कोई भरोसा नहीं। बहुत सारे पत्ते पीला होने से पहले भी नीचे पड़े दिखाई देते हैं।

हाँ, सजग करते हुए वेद सुझाव देता है–**गोभाज इत् किल असथ**=गो का सेवन करने वाले होवो। हमारी बोल–चाल में गो शब्द पशु विशेष के लिए आता है। इसके साथ अपने शास्त्र समझाते हैं, कि गो शब्द–धरती, सूर्य, चन्द्र, आँख आदि इन्द्रिय, बुद्धि–ज्ञान के लिए भी आता है। यहाँ वेद विशेष ध्यान आकर्षित करते हुए कहता है, कि अवसर–अवसर के अनुरूप गो वाच्य का सदुपयोग करो। जिस से **यत्लनवथ पुरुषम्** तुम पूर्ण, सफल बन जाओ।

गोभाज के साथ इत और **किल** लगा कर संकेत किया जा रहा है, कि 'ऐसी करनी कर चलो'–जिससे वाह–वाही नेक–नामी चाहने वाले प्रशंसा के पात्र बन सकें। अपनी दिनचर्या–जीवनचर्चा, चाल–चलन

शेष पृष्ठ 06 पर ☞

गतांक से आगे...

आर्य-पथिक का बलिदान

● पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति

दो **महाप्रतापी मित्र : –** इतनी तेजस्विता और इतनी तेजी साधारण संसार में बहुत देर तक नहीं चल सकती। कुछ काल के पीछे दैव ही उसका रास्ता रोकने का उपाय सोचने लगता है। महर्षि के जीवन की सामग्री एकत्र हो जाने पर जब आपने उसे लिखने का काम आरम्भ किया तब आप जालन्धर में रहने लगे। उस समय जालन्धर आर्यसमाज का बहुत बड़ा केन्द्र बन चुका था। हम कन्या महाविद्यालय की चर्चा पहले कर आए हैं। उसके संस्थापकों में दो महानुभाव मुख्य थे– एक ला. देवराज जी और दूसरे ला. मुन्शीराम जी। लाला देवराज जी कन्या महाविद्यालय के संचालन में एकाग्रता से लग गए और ला. मुन्शीराम जी पहले जालन्धर आर्यसमाज के प्रधान और फिर प्रचार का कार्य बढ़ जाने पर आर्य प्रतिनिधि सभा के भी प्रधान रहे। इसके अतिरिक्त आपने 'सद्धर्म प्रचारक' नाम के साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ कर दिया। पं. लेखराम जी का उनसे बहुत प्रेम था। जीवन के अन्तिम हिस्से में भी आर्य–पथिक मानो उनके अभिन्न मित्र बन गए थे। दोनों की प्रकृतियों में अन्य कई प्रकार के भेद होते हुए भी यह बहुत बड़ी समानता थी कि **दोनों पूर्ण रूप से निर्भय थे और वैदिक धर्म में अटल विश्वास रखते थे। पंडित जी को जालन्धर में रहने से एक यह भी लाभ था कि सद्धर्म प्रचारक प्रेस से पुस्तकों की छपाई में बहुत सहायता मिल सकती थी।**

1897 के आरम्भ में वे जालन्धर छोड़ कर लाहौर चले गए। यह स्थान परिवर्तन किसी निमित्त से हुआ या दैवयोग से यह कहना कठिन है। **{ऋषि–जीवन के प्रकाशन कार्य की व्यवस्था लाहौर में ठीक थी। – 'जिज्ञासु'}** कहा जा सकता है कि यदि कोई निमित्त भी था तो उसका कारण ईश्वरेच्छा था। आर्य पथिक को अमर पदवी मिलनी थी, यह भी उसका एक कारण बन गया।

जब मिर्जा गुलाम अहमद कादियानी के पास आर्य पथिक की जबरदस्त युक्तियों का कोई उत्तर न रहा तो वह धमकियों पर उतर आया। मुबाहिसे में हार कर मुबाहिला (शापों का आक्रमण) जारी कर दिया। गुलाम अहमद ने यह भविष्यवाणी की कि यदि मैं सच्चा हूँ और लेखराम झूठा है तो एक साल के अन्दर – अन्दर काफिर पर खुदा की मार पड़ेगी। इसके उत्तर में पंडित लेखराम जी ने यह आशीर्वाद दिया कि ईश्वर की ऐसी कृपा होगी कि मिर्जा झूठ को छोड़ कर सच को मानने लगेगा। **{पण्डितजी ने मौत की धमकी दिए जाने पर ये शब्द नहीं कहे थे। आपने इस भविष्यवाणी को कोई महत्त्व ही न दिया। एक फारसी कविता में कहा मुझे मार दो, काट दो, जला दो परन्तु मैं वैदिक धर्म से मुख न मोडूँगा। देखिए रक्तसाक्षी पं० लेखराम ग्रन्थ– ' जिज्ञासु'}** मिर्जा ने जो भविष्यवाणी की, प्रतीत होता है कि उसकी पूर्ति के उद्योग में कोई कसर नहीं छोड़ी।

पंडित जी के बलिदान की घटना का संक्षिप्त और हृदयस्पर्शी वर्णन आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के इतिहास के यशस्वी लेखक पं. चमूपति जी के शब्दों में पढ़िए। वे अपने इतिहास में लिखते हैं:

मार्च 1897 के आरम्भ में एक कुरूप मुसलमान इनके पास शुद्धि के लिए आया। इन्होंने उसका आगा–पीछा कुछ नहीं पूछा। पूर्ण विश्वास–पूर्वक अपने पास रख लिया। दिन को वह इनके पास रहता और रात को अन्यत्र कहीं चला जाता। इन्हें यह भी ज्ञात नहीं था कि रात को कहाँ रहता है?

6 मार्च को वह कम्बल ओढ़ कर आया और काँपने लगा। पूछने पर उसने बताया कि उसे बुखार और पेट का दर्द है। पंडित जी उसे डॉक्टर के पास ले गए। डॉक्टर ने कम्बल उतार कर लेप करना चाहा पर उसने पीने की दवाई माँगी। इन्होंने वही ले दी। एक बजाज की दुकान पर जाकर माता जी को दिखाने के लिए कपड़े ले दिए। बजाज ने सावधान किया कि यह भयंकर आकृति का मनुष्य मृत्यु की मूर्ति प्रतीत होता है परन्तु पंडित जी तो आज स्वयं मृत्यु से ही प्यार करने चले थे। यम के दूत को ही कभी का घर पर निमन्त्रण दे रखा था। उसी को मानो वे सद्धर्म का पिपासु समझते रहे।

घर पर आकर ऋषि की जीवनी लिखने बैठे। वह भी पास की एक कुर्सी पर बैठ गया। ज्यों ही थक कर उन्होंने कलम रखा और छाती खोल कर अंगड़ाई लेने लगे, उस अभ्यस्त हत्यारे ने छुरी निकाल कर इनके पेट में घोंप दी और घुमा–घुमा कर एक अंतड़ी काट ही डाली और आठ बड़े और अनेक छोटे घाव कर दिए। पंडित जी ने एक हाथ से अपनी अंतड़ियों को सँभाला और दूसरे हाथ से उससे दस्तपंजा लिया। इसी कशमश में सीढ़ियों तक पहुँच गए। देवी लक्ष्मी ने पहुँचकर इन्हें रसोई में धकेल दिया और वृद्धा माता जी ने घातक को जा पकड़ा। पर इतने में हत्यारे के हाथ बेलन आ गया जिसकी दो चोट से उसने माता जी को अचेत कर नीचे फेंक दिया और अपने आप यह जा वह जा आन की आन में आँखों से ओझल हो गया।

इस घायल अवस्था में पंडित जी को अस्पताल ले जाया गया। वहाँ भी इनका प्रभु पर विश्वास एवं अटूट धैर्य नहीं टूटा। **गायत्री** तथा **'विश्वानि देव'**, का पाठ ही करते रहे। मरते दम न माता की चिन्ता थी, न प्राणप्रिया लक्ष्मी की चिन्ता थी, चिंता थी तो इस बात की कि 'आर्यसमाज से तहरीरी का काम बन्द नहीं होना चाहिए।' यह कहा और रात के दो बजे शरीर छोड़ दिया।

वीर की अरथी के साथ सहस्त्रों मनुष्यों का ताँता लग रहा था। लाहौर के नर–नारी इस निर्भीक युवक के बलिदान पर अत्यन्त क्षुब्ध थे। पृथिवी पर हर जगह फूल ही फूल दीखते थे। गुलाब के पानी के कंटर के कंटर बहा दिए गए। आर्यजाति में एक नई स्फूर्ति थी, नया आवेग था। प्रतीत यह होता था कि एक धर्मवीर के बलिदान ने सम्पूर्ण जाति को नया जीवन प्रदान कर दिया है। पवित्रता का पारावार था, उत्साह ठाठे मार रहा था, साहस की बाढ़ आ गई थी, जिधर देखो कर्मण्यतापूर्ण वैराग्य था।

श्मशान भूमि में अद्भुत दृश्य था। शहीद की चिताग्नि ने मानो सब आर्य नर–नारियों के परस्पर भेदों को जलाकर राख कर दिया था। सबके मन में जो भाव था उसे ला० मुन्शीराम जी ने अपने भावुकता से भरे हुए भाषण में इन शब्दों में प्रकट किया था – "हम सबको चाहिए कि हम वीर की चिता के समीप खड़े होकर यह प्रतिज्ञा करें कि आपस की फूट को हटाकर प्रेमपूर्वक मिल कर काम करेंगे। यदि फूट चलती रही तो मेरे लिए काम करना बहुत असम्भव हो जाएगा।"

श्मशान भूमि के भाषणों में पंडित जी का यह वाक्य सुनाया गया कि – "मेरे पीछे तहरीर का काम बन्द न होने पावे। आर्य नेताओं ने उपस्थित जनता के सामने यह संकल्प प्रकट किया कि वे तहरीर के काम को बन्द न होने देंगे।"

'आर्यसमाज का इतिहास भाग–1' से साभार

☞ पृष्ठ 05 का शेष

मृत्यु कब-कैसे आती है ?

स्मरणीय बनाने वाले ही सदा स्मरणीय होते हैं। गोभाज–गो नाम से पुकारी जाने वाली चीज़ों को वर्तने वालो! अनोखे गोधन (तत्त्व) को व्यवहार में लाने वालो ! इस अनमोल की ऐसे–ऐसे–इस प्रकार से संभाल करो, सही ढंग से वर्तो, व्यवहार में लाओ, कि देखने वाले कह सकें, कि इसने तो कमाल कर दिया। इस–इस को प्राप्त कर के सफल कर दिया।

यह अनोखा मानव तन हमें पूर्ण बनने, मुकमल होने के लिए ही मिला है। इस कीमती मानव चोले को पहन (धार) कर किसी के काम भी आ सकते हैं। तभी तो गाया गया–***'किसी के काम जो आए–उसे इन्सान कहते हैं।'***

इस दुनिया में आकर हम सबको एक अवसर–मौका मिलता है। जिससे हम आगे से आगे बढ करके कुछ विशेष कर सके/सफल हो सकें। किसी कार्यक्षेत्र में अनोखा करके दिखाएँ अपने शास्त्रों के सन्देशों को चरितार्थ करके अपने नाम को रोशन कर जाएँ महापुरुषों के दिखाए मार्ग पर चल कर वाह–वाही प्राप्त कर सकें। श्री राम, श्री कृष्ण के समान सभी की यादों में लम्बे समय तक बने रहें अमर हो जाएँ। मोक्षधाम के अधिकारी बन जाएँ।

'यूं फूल तो खिलते हैं
गुलशन में हजारों ही'

182, शालीमार नगर
होशियारपुर–146001

लोभ, लालच न कर, यह धन आखिर है किसका ?

● आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार

मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।
यजुः . 40.1

अन्वयार्थ – हे मानव ! **(मा गृधः, धनं कस्य स्वित्)** तू लोभ नं कर, लालच न कर, वरन् 'यह धन किसका है ?' यह सोच, यह विचार। यह सोच–विचार करने पर तुझे ज्ञात होगा कि यह न आज तक किसी का हुआ, न किसी का है और न ही किसी का होगा।

वेद कहता है– हे मानव! तू उस प्यारे परमेश्वर को क्षण– क्षण और कण–कण में सर्वदा सर्वत्र व्यापक समझ कर जो भी कुछ तुझ को तुम्हारे कर्मानुसार उससे प्राप्त होवे उसका सन्तोष पूर्वक ही नहीं वरन् त्यागपूर्वक भी उपभोग कर, दानपूर्वक ही सेवन कर अपने कर्मानुसार जो भी प्रभु तुझे धन–वैभव, स्त्री–पुत्र, पद–प्रतिष्ठा आदि प्रभु तुझे जो भी प्रदान करे उसी पर सदा हृदय से सन्तुष्ट प्रसन्न रहता हुआ प्रभु का धन्यवाद कर। तू किसी के भी धन–वैभव की, सुख–सौभाग्य की और पद–प्रतिष्ठा की लालसा न कर। क्योंकि जब तू अपने कर्मों के आधार पर प्राप्त हुए–हुए धन–वैभव आदि पर सन्तोष नहीं करेगा और दूसरे के धन–धान्य, पद–प्रतिष्ठा आदि को ही लालसा की दृष्टि से देखता रहेगा तो ऐसी अवस्था में तू प्रभु के न्याय–नियमानुसार उपलब्ध हुए–हुए धन–धान्य आदि का भी सम्यक् उपभोग करके सुख नहीं पा सकेगा और पराया जो धन–वैभव, पुत्र–कलत्र, मान–सम्मान आदि है, जिस पर कि तेरी दृष्टि गड़ी हुई है, वह तुझे प्राप्त ही नहीं हो सकेगा। क्योंकि वह सब कुछ उस दूसरे व्यक्ति के कर्मों के आधार पर ही उसे मिला हुआ है। फिर ऐसी दृष्टि रखने पर, ऐसी वृत्ति रखने पर जहाँ तुम्हारे मन में ईर्ष्या– डाह की अग्नि सुलगने लगेगी वहाँ तुम उस व्यक्ति की दृष्टि में भी गिर जाओगे। तुम्हारी वृत्ति तब सदा बिगड़ी ही रहेगी और वृत्ति के बिगड़ी रहने पर फिर तुम्हारी आकृति भी सदा बिगड़ी रहेगी। वृत्ति और आकृति के सदा बिगड़ी रहने पर तुम्हारी प्रकृति और प्रवृत्ति भी सदा बिगड़ी रहेगी, तुम्हारा स्वभाव और व्यवहार भी सदा बिगड़ा हुआ रहेगा। तब तुम सबकी दृष्टि में शनैः–शनैः गिर जाओगे और धीरे–धीरे घृणा– नफरत के भी पात्र बन जाओगे। तब तुम किसी अन्य के धन–धान्य को देखकर, सुख–सौभाग्य को देखकर, मान–सम्मान को देखकर, पद–प्रतिष्ठा को देखकर कभी खिल नहीं सकोगे, कभी खुश नहीं हो सकोगे, कभी प्रसन्न नहीं हो सकोगे। सच्ची बात तो यह है कि तब तुम्हारी सूरत सड़ी–गली सी रहेगी, तुम्हारी शक्ल के पीछे जो अक्ल होगी उस पर भी तब ताले से पड़ जाएँगे। तुम भी तब कभी–कभी यह सोचोगे कि–'यह सब क्या हो रहा है ? यह मैं बिना आग के कैसा जला जा रहा हूँ ? यह सब कुछ खाते–पीते हुए भी मैं सदा कुम्हलाया–सा क्यों रह रहा हूँ ? पर यह सब कुछ सोचते हुए भी तब तुम्हें कुछ राह नहीं दिखाई देगी...।' तब तुम वास्तव में तो अपने लिए वह सब कुछ अर्जित तो कर नहीं सकोगे और उल्टा अगले के अर्जित उस धन–धान्य पर जलते–भुनते हुए अपने जीवन की अमूल्य घड़ियों को व्यर्थ गँवाते रहोगे। यह सब करने के स्थान पर यदि तुम उन जैसा कुछ पुरुषार्थ करोगे तो सम्भवतः तुम उन से भी आगे बढ़ सकोगे। पर ईर्ष्या और डाह के कारण अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए तब सम्भवतः तुमसे पुरुषार्थ ही नहीं हो सकेगा वरन् तुम तो और भी दूसरों के धन–धान्य, सुख– सौभाग्य, पद–प्रतिष्ठा आदि को नष्ट करने के लिए दौड़–धूप करोगे। अतः वेद का आदेश है कि – "हे मानव! **(मा गृधः)** तू लोभ न कर, लालच न कर, तू किसी के धन–वैभव, सुख–सम्पत्ति की लालसा मत कर। बल्कि तू विचार कर **'धनं कस्य स्वित् ?'** यह धन आखिर किसका है ?" अर्थात् किसी का भी नहीं है। तो फिर तू क्यों इसके लिए इतना पागल होता है ? वेद के आधार पर तुझे अपने कर्मों के अनुसार उपलब्ध हुए–हुए अपने ही धन–वैभव का भी जब सन्तोष पूर्वक ही नहीं, वरन् त्याग पूर्वक उपभोग करने का आदेश है, दान पूर्वक सेवन करने का उपदेश है, तो फिर इस प्रकार दूसरे के धन–धान्य पर दृष्टि गड़ाए रखना कहाँ तक संगत है ? तेरे पास भी जो धन–सम्पत्ति है उसका भी जब तू सदा के लिए स्वामी नहीं बन सकता, सदा के लिए मालिक नहीं बन सकता अर्थात् उस सब धन–वैभव ने, सुख–सौभाग्य ने, मान–सम्मान ने भी जब सदा तेरे पास विद्यमान नहीं रहना, उसने भी एक दिन जब तुझसे विदा हो जाना है, जैसे कि प्रातः होते ही ये तारे विदा हो जाते हैं तो फिर तू अन्य के इस धन–धान्य पर, स्त्री–पुत्र पर, पद–प्रतिष्ठा पर मान–सम्मान पर व्यर्थ लोभ की दृष्टि गड़ा कर क्यों अपने आप को खराब करता है। तुझे चाहिए कि वेद के कथनानुसार **"तू लोभ न कर, लालच न कर"** इस सदुपदेश को हृदयङ्गम करे और इसी के अनुसार ही अपना जीवन बिताए। और फिर तू लोभ भी करता है, लालच भी करता है तो आखिर किसलिए करता है ? क्योंकि जिस धन–वैभव आदि के लिए तू इतना लोभ करता है, इतनी लालसा करता है वह धन–वैभव भी तो आज तक न किसी का हुआ है, न किसी का है और न ही किसी का रहेगा। यदि यह धन–वैभव किसी का सदा के लिए नहीं हो सकता है तो फिर तू इसका लोभ क्यों करता है ?

भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गीता में इस लोभ को नरक का द्वार बताया है। यह अनेक पापों का, अपराधों का मूल है। यह पतन का कारण है अतः शास्त्रों ने मनुष्यों को इससे सदा सतर्क किया है, सावधान किया है। क्योंकि एक बार जब यह मनुष्य इस लोभ के चक्कर में आ जाता है तो फिर इस मनुष्य का इस से छुट्टी पाना सरल नहीं होता। इस संसार के धन– वैभव को, स्त्री–पुत्र को, ज़मीन–जायदाद को कितना भी प्यार से क्यों न अपनाए रखो, कितना भी प्यार से क्यों न हृदय में संजोए रखो पर फिर भी एक दिन इस ने चला ही जाना है। इस धरती पर कितने ही महाराजे आ चुके, इन सब भोग पदार्थों को प्राप्त करने के लिए नानाविध संघर्षों को कर चुके हैं और फिर सदा सजग–सावधान रहकर इस पर साँप की तरह भी बैठ चुके वा इसे सदा छाती से भी लगाए रख चुके, पर यह सब धन–वैभव आदि उनका भी नहीं हुआ।

इसी भारत वर्ष पर महमूद गजनवी ने लोभ–लालच से अभिभूत होकर सत्रह बार आक्रमण किया और अन्त में यहाँ से खूब धन–माल ले गया, पर अन्त में वह भी जब इस दुनिया से गया तो खाली हाथ ही गया। उनके सम्बन्ध में एक गाथा प्रसिद्ध है–वह यह है कि उनकी मृत्यु के कई वर्षों के उपरान्त खुरासान देश के एक बादशाह ने उन्हें स्वप्न में देखा कि उसका सारा का सारा शरीर गल कर मिट्टी में मिल गया है परन्तु फिर भी वह आँखे फाड़े हुए अभी तक भी चारों ओर देख रहा है। उस व्यक्ति ने अपना यह स्वप्न किसी एक सन्त को सुनाया और पूछा कि इसका क्या मतलब है ? तो उस महात्मा ने उत्तर दिया कि महमूद की आँखें बड़े दुःख के साथ यह देख रही हैं कि उसके जीते हुए सब देश अब दूसरों के हाथों में चले जा रहे हैं। धन सचमुच किसी का साथ नहीं देता।

महान् सम्राट् सिकन्दर को ही देख लीजिए, इसी लोभ के कारण उसने अपना जीवन धन–वैभव के संग्रह में लगा दिया पर जब उसका अन्त समय आया तो वह भी बड़ा पश्चात्ताप करता हुआ कहता है कि – 'हा ! मैंने अपना सारा जीवन जिस सम्पत्ति के संग्रह में लगा दिया, आज उस अपार धन–सम्पत्ति में से एक कानी – कौड़ी भी मेरे साथ नहीं जा रही है। खैर, मेरा जीवन तो इसके पीछे नष्ट हुआ सो हुआ पर मेरी इस घटना से संसार के लोगों को कुछ शिक्षा मिल सके और वे इसके लिए अपने अमूल्य जीवन को बर्बाद करने से बच सकें, इसलिए मेरे इस पार्थिव शरीर को, शव को जब दफनाने के लिए ले जाया जाए तो मेरे दोनों हाथ कफन से बाहर खाली हथेली निकाल कर ले जाया जाए। ऐसा करने पर सचमुच संसार के लोगों को पता लग सकेगा कि – "सिकन्दर जब गया दुनिया से दोनों हाथ खाली थे।" स्वामी ब्रह्ममुनि जी ने सिकन्दर महान् के इन भावों को यों पद्यबद्ध किया है–

छोड़ दुर्ग रण कोष सभी
कुछ रिक्त हस्त है जाता।
चला सिकन्दर कफन से
बाहिर दोनों हाथ दिखाता।

सिकन्दर महान् की मृत्यु पर उसकी माता ने भी बड़े दर्द भरे शब्दों में यह कहा था–

ऐ सिकन्दर न रही तेरी आलमगीरी।
कितने दिन आप जिया और किस लिए दारा मारा।

अर्थात् हे सम्राट् सिकन्दर ! तेरी विश्व विजय का शीघ्र ही अन्त हो गया। कितने दिन तू संसार में जीवित रहा और किस लक्ष्य के लिए ? राज्य के लोभवश 'दारा' राजा को मारा।

राजा भोज के चाचा मुंज ने भी जब राज्य के लोभ में आकर बालक भोज को गुरुकुल से बुलवा कर मौत के घाट उतारने के लिए वन भिजवाया था तो उस समय बालक भोज ने अपने चाचा मुंज को अपने रक्त से इसी अभिप्राय को अभिव्यक्त करने वाला एक सन्देश भेजा था। वह यह है कि–

मान्धाता क्व महीपतिः कृतयुगालंकारभूतो गतः।
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः।
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते।
नैकेनापि समं गता वसुमती नूनं त्वया यास्यति।।

– भोज प्रबन्ध 38

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

उपनिषयों की कथा

'तत्त्वमसि' का उपदेश

● डॉ. भवानीलाल भारतीय

(दो अंकों में समाप्य)

पुराकाल में आरुणि मुनि का श्वेतकेतु नामक एक पुत्र था। पिता ने उसे कहा, "अब तेरी आयु ब्रह्मचर्य धारण की है, अतः ब्रह्मचर्यपूर्वक आचार्य के सामीप्य में रहकर विद्याध्ययन कर। हमारे कुल में कोई ऐसा नहीं हुआ जिसने वेदों का अध्ययन न किया हो। हमारे परिवार के सभी बालक वेदज्ञ होते आए हैं।" पिता की आज्ञा मानकर श्वेतकेतु भी बारह वर्ष तक गुरु के सान्निध्य में रहा। बारह वर्ष की आयु में उसका गुरुकुल में प्रवेश हुआ और पुनः बारह वर्ष तक वह वहाँ पढ़ता रहा। इस प्रकार जब चौबीस वर्ष की आयु प्राप्त कर पिता के समीप लौटा तो वह बड़ा मनस्वी, वेद का पण्डित तथा स्वयं के मत के प्रति आग्रही बनकर ही आया। पिता ने जब उसकी उपर्युक्त मनःस्थिति जानी तो उसे पूछा – **"क्या तुमने अपने आचार्य से उस रहस्य को भी पूछा है जिसके जान लेने से अश्रुत तत्त्व भी सुना हुआ–सा लगता है, जिस पर मनन नहीं किया वह भी मन की परिधि में आ जाता है और जिसके कारण अज्ञात पदार्थ को भी जान लिया जाता है ?" श्वेतकेतु तो इस रहस्य से अनभिज्ञ ही था, अतः उसने पिता से पूछा–"भगवन्, वह रहस्य क्या है, इसका उपदेश मुझे आप करें।"**

आरुणि मुनि अब कहने लगे, "यदि हम मिट्टी के एक ढेले को जान लें तो समझ लो कि हमने सारी मृण्मय वस्तुओं को जान लिया, क्योंकि मिट्टी से ही तो घड़ा, सिकोरा आदि पदार्थ बने हैं। वास्तव में देखा जाए तो मिट्टी ही सत्य है; अन्य पदार्थ तो उससे निर्मित होने के कारण अलग–अलग नाम धारण किए हैं इसलिए हमें तात्त्विक पदार्थ तो मिट्टी को ही मानना चाहिए।" आरुणि ने दूसरा उदाहरण दिया – "यदि आप स्वर्ण–पिण्ड को जान लेते हैं तो उससे बननेवाले सभी आभूषणों के स्वर्णमय होने का ज्ञान आपको स्वतः ही हो जाएगा। **अतः स्वर्ण ही सत्य है; उससे निर्मित वस्तुएँ तो उसका विकार–मात्र हैं।** इसी प्रकार यदि लोहे को पहचान लिया तो उससे बननेवाले अन्य पदार्थों के लौहमय होने का पता चल जाता है। **सत्य तो लोहा ही है; इससे बने पदार्थ तो उसके विकार मात्र हैं।"**

इन तीन उदाहरणों को देकर आरुणि ने अपने पुत्र को यह बताया कि **संसार में जानने योग्य यदि कुछ है तो परमात्मा ही है। यदि हमने उसे जान लिया तो अन्य सब–कुछ जान लिया।** कारण कि संसार के उत्पन्न होने, उसके संचालित होने तथा यथासमय उसके अपने कारण–तत्त्व में विलीन होने का कारण भी तो परमात्मा ही है। पिता के इन वचनों को सुनकर श्वेतकेतु ने कहा, "मेरे आचार्य ने तो मुझे यह तत्त्व नहीं बताया, सम्भवतः वे इस ज्ञान से अनभिज्ञ ही होंगे क्योंकि यदि जानते होते तो अवश्य बताते।" अतः उसने अपने पिता से कहा, "अब आप ही मुझे यह ज्ञान प्रदान करें।" पिता ने ऐसा करना स्वीकार किया।

आरुणि कहने लगे, "जब संसार की रचना नहीं हुई थी, उस समय ब्रह्म सत् रूप में विद्यमान था। वही एक अद्वितीय था। सृष्टि तो व्यक्त रूप में थी ही नहीं, प्रकृति (उपादान कारण) भी अपनी सुप्तावस्था में थी। कई लोगों का यह भी विचार है कि आरम्भ में कुछ भी नहीं था, अभाव (असत्) ही था, उस अभाव से ही भाव की उत्पत्ति हो गई। नास्ति से अस्ति हुई।" किन्तु आरुणि इस मत का प्रतिवाद करते हुए कहते हैं, **"भला अभाव से भी कभी भाव की उत्पत्ति हो सकती है ? अतः यह मानना ही उचित है कि परमात्मा ही सत् रूप में सदा विद्यमान था, है और आगे भी रहेगा। अब उस परमात्मा ने एक होने पर भी बहुत प्रकार की सृष्टि रचना करने का विचार किया और प्रजा को उत्पन्न करने की इच्छा की।** परमात्मा की यह इच्छा साधारण मनुष्यों की कामना की भाँति नहीं है। यह उसका स्वभाव है और **इसे अध्यात्मशास्त्रों में ईक्षण कहा गया है।** उसके इस ईक्षण का प्रथम परिणाम संसार में तेज के रूप में दिखाई पड़ा। प्रकाशमान पदार्थों की रचना सर्वप्रथम हुई। तत्पश्चात् जल (द्रव्य) बना। इस प्रकार अग्नि और जल इन दो भूतों की रचना हुई।.....

"अब जलों ने भी बहुत हो जाने की जब इच्छा की तो उनसे अन्न उत्पन्न हुआ।" यह स्वाभाविक ही है कि जल से ही अन्न पैदा होता है। जहाँ बादल बरसेंगे वहाँ अन्न की उत्पत्ति निश्चित ही है। इसी अभिप्राय को गीताकार ने **'पर्जन्यादन्नसम्भवः'** (3। 14) कहकर व्यक्त किया है। जब अन्न पैदा हो गया तो उसे खानेवाले जीवों की सृष्टि हुई। यह जैविक सृष्टि तीन प्रकार की है–पक्षी आदि **अण्डज** हैं, वृक्षादि **उद्भिज्ज** हैं तो अन्य मनुष्य एवं पशु आदि **जरायुज** कहे जाते हैं। परमात्मा से उत्पन्न यह तेज, जल और पृथिवी से उत्पन्न अन्न ही नाना रूप होकर सृष्टि को विविधता देते रहे। तत्त्वतः देखा जाए तो **संसार के हर पदार्थ में तेज, जल और पृथिवी के गुण रहते ही हैं।** उदाहरणतः अग्नि को लें। उसमें जो लालिमा है वह उसका तेज–रूप है, जो शुक्ल है वह जल का प्रतीक है तथा जो काला है वह पृथिवी का रूप है। सूर्य का उदाहरण भी लिया जा सकता है। इसमें भी जो लालिमा, शुक्ल पक्ष तथा कालिमा दिखाई पड़ती है वह क्रमशः तेज, जल और पृथिवी की ही प्रतीक है। यही बात चन्द्रमा और विद्युत् में भी दिखाई पड़ती है।

जो भोजन हम करते हैं वह पचकर शरीर में तीन भागों में विभक्त हो जाता है। उसका स्थूल भाग विष्ठा, मध्यम भाग मांस तथा सूक्ष्मतम अंश मस्तिष्क के विचार–तन्तुओं का रूप ले लेता है। जल भी जब पी लिया जाता है तो शरीर में पहुँचने के बाद उसकी इसी प्रकार त्रिविध गति होती है। स्थूल भाग मूत्र–रूप में, मध्यम भाग रक्त–रूप में तथा सूक्ष्म रूप प्राण बनकर जीवन– पोषक हो जाता है। घृत आदि जो पौष्टिक पदार्थ होते हैं वे भी शरीर में जाकर तीन प्रकार के हो जाते हैं। इनका स्थूल भाग अस्थि, मध्यम भाग मज्जा तथा सूक्ष्म भाग वाणी को शक्ति देता है। इसीलिए मन को अन्नमय, प्राणों को जलमय तथा वाणी को तेजोमय कहा जाता है। यह सारा विवेचन थोड़ा क्लिष्ट था, अतः श्वेतकेतु की समझ में नहीं आया अतः उसने कहा, "भगवन्, यह विषय मुझे पुनः समझाएँ।" आरुणि ने 'तथास्तु' कहकर स्वीकार किया। उसने उदाहरण देकर कहा कि दही के बिलोए जाने पर उसका सूक्ष्म भाग ऊपर उठकर मन का अंश बनता है, पिए हुए जल का सूक्ष्म अंश प्राणरूप बनता है और शरीर में प्रविष्ट तेज का अंश सूक्ष्म होकर वाणी में आता है। तेजोमय वाणी या प्रचण्ड वाणी का प्रयोग हम तभी करते हैं जब हमारी वाणी में तेज के तत्त्व की प्रधानता रहती है। जब इन उदाहरणों से भी विषय बहुत स्पष्ट नहीं हुआ तो श्वेतकेतु ने पुनः समझाने के लिए कहा जिसे उसके पिता ने स्वीकार किया।

अब आचार्य आरुणि ने इस देहस्थ आत्मा को सोलह कलायुक्त बताया और श्वेतकेतु से कहा–"षोडश कलायुक्त" यह मनुष्य–शरीर मुख्यतः अन्न और जल पर ही टिका हुआ है। तू पन्द्रह दिनों तक भोजन मत कर, किन्तु जल पीकर ही रह। यदि जल पीना बंद कर दिया तो तेरे प्राण वियुक्त हो जाएँगे। श्वेतकेतु ने विषय का क्रियात्मक बोध करने की दृष्टि से पिता का आदेश माना और पूरे एक पखवाड़े तक बिना खाए रहा। जब सोलहवें दिन वह पिता के पास आया तो उसका शरीर अशक्त हो चुका था, उसकी स्मृति भी नष्टप्राय थी। पिता से कहा, "बताइए, मैं क्या कहूँ, क्या बोलूँ ?" पिता ने परीक्षा लेने की दृष्टि से कहा, "तुम मुझे ऋग्वेद की ऋचाएँ, यजुर्वेद के मंत्र तथा सामवेद का संगीत सुनाओ।" पुत्र ने कहा, "पिताजी ! पन्द्रह दिनों तक भूखे रहने के कारण ये सभी विषय विस्मृत हो गए हैं। मुझे कुछ भी तो याद नहीं है।"

अब पिता ने समझाकर कहा, "जैसे प्रचण्ड अग्नि के बुझ जाने पर भी जुगनू की तरह एक छोटा–सा अंगारा शेष रह जाए तो उससे बड़े घास का ढेर नहीं जलता – वह अंगारा स्वयं भी बुझकर राख बन जाता है, इसी तरह तेरे शरीर की पन्द्रह कलाएँ तो अनशन के कारण नष्ट हो गई हैं; मात्र एक कला (जल पीते रहने के कारण) शेष रह गई है। ऐसी स्थिति में वेदमंत्रों की भी विस्मृति हो गई है। अब तू भोजन करके आ। जब भोजन कर लेगा तो तेरी विलुप्त हुई स्मृति पुनः जग जाएगी और मुझे तू वेद सुना सकेगा।" श्वेतकेतु ने ऐसा ही किया और पिता के पूछे सभी प्रश्नों का उत्तर दिया। विषय को स्पष्ट करते हुए आरुणि ने कहा– "एक बचे हुए अंगारे को भी यदि छोटे तिनकों के समीप धरकर जलाएँ तो वह पुनः प्रचण्ड अग्नि का रूप ले लेता है, उसी प्रकार भूखे रहने के कारण तेरे शरीर का बहुलांश में ह्रास हो गया था। मात्र एक कला ही बची थी। जब उस कला का संयोग पुनः अन्न से हुआ तो अवशिष्ट सुप्त कलाएँ भी पुनः जागृत हो गईं और वेदों को तू पुनः स्मृत कर सका। अतः यह यथार्थ ही है कि मन अन्नमय है, प्राण जलमय हैं और वाणी तेजोमयी है।"

क्रमशः

'उपनिषदों की कथायें' से साभा

☞ पृष्ठ 04 का शेष

जातकर्म संस्कार में ...

आसन पर बैठ के (**अयन्त इध्म आत्मा.**) पृष्ठ में लिखे मन्त्र से वेदी में चन्दन की समिधा करें।

(ख) असली कापी पृ. 47 में **'अयन्त इध्म.'** इत्यादि चार मन्त्रों से समिदाधान..........

(ग) असली कापी पृ. 104 में ——— **(ओं अयन्त इध्म.)** इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान ———'

(घ) असली कापी पृ. 118 में, 'पृष्ठ में अग्न्याधान **(ओं भूर्भुवः स्व द्यौ.)** इस मन्त्र से करें **(ओं अयन्त इध्म.)** इस मन्त्र से समिदाधान करके।'

(ङ) असली कापी पृ. 121 में पृष्ठ में लिखे प्रमाणे **(ओं अयन्त इध्म.)** इस मन्त्र से समिदाधान करने को ऋषि ने स्पष्ट लिखा है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की संस्कार–विधिः में **'अयन्त इध्म आत्मा.'** मन्त्र प्रक्षिप्त है या नहीं। इस सन्दर्भ में पं. धर्मवीर विद्यालंकार (ज्वालापुर, हरिद्वार) ने परोपकारिणी सभा के सहयोग से ऋषि मेले के अवसर पर ऐतिहासिक शास्त्रार्थ आयोजित किया। जिसमें दोनों पक्षों को आमंत्रित किया। **'अयन्त इध्म आत्मा.'** से समिदाधान एवं पंचघृताहुति देने के पक्ष में श्रद्धेय डॉ.ज्वलन्तकुमार शास्त्री {अमेठी}, डॉ. वेदपाल सुनीथ {तिलोश} एवं आचार्य सत्यव्रत राजेश {हरिद्वार} थे तथा विपक्ष में श्री इन्द्रदेव यति {पीलीभीत} श्री रघुराज शर्मा {कानपुर} श्री विद्यादेव जी {आगरा} थे। शास्त्रार्थ पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज की अध्यक्षता में दिनाङ्क 14–11– 1994 को सद्भावनापूर्ण वातावरण में आर्यो की उपस्थिति में लिखित एवं मौखिक रूपेण सरस्वती भवन, ऋषि उद्यान, अजमेर में सम्पन्न हुआ। अन्त में शास्त्रार्थ के संयोजक पं. धर्मवीर विद्यालंकार ने अपना निर्णय सुनाया कि श्री इन्द्रदेव यति का पक्ष यह सिद्ध नहीं कर सका कि महर्षि की संस्कार–विधिः में **'अयन्त इध्म आत्मा.'** मन्त्र प्रक्षिप्त है।

पण्डित युधिष्ठर मीमांसक जी ने अपनी भूल को सुधार करते हुए वैदिक–नित्यकर्म–विधिः {संस्करण चैत्र सं 2050 वि., अप्रैल सन् 1993 ई.} के द्वितीय परिशिष्ट के अन्तर्गत समिदाधान–मन्त्रों के सम्बन्ध में लिखा है संस्कारविधि में तीन समिधाओं के लिए चार मन्त्रों का विधान मिलता है। संस्कार–विधिः की शुद्ध प्रतिलिपि (=प्रेस कापी) में पहले तीन ही समिदाधान के मन्त्र थे। उसी प्रतिलिपि में **अयन्त इध्म आत्मा.** मन्त्र हाशिये पर बढ़ाया गया, और तीन मन्त्रों की दृष्टि से पूर्व लिखे गये, आहुति–प्रदान सम्बन्धी भाषा के लेख में भी परिवर्तन किया गया। मन्त्र का लेखक अन्य व्यक्ति है, परन्तु तीन मन्त्र–संबन्धी पूर्व भाषा पाठ को चार मन्त्रों के साथ संबद्ध करने के लिए जो भाषा पाठ में परिवर्तन किया गया, वह ऋषि दयानन्द के हाथ का है। इससे यह स्पष्ट है कि **'अयन्त'** मन्त्र का परिवर्धन उनके आदेशानुसार किया था। अतः जो व्यक्ति **'अयन्त इध्म आत्मा.'** को प्रक्षेप मानते हैं, वह अयुक्त है।

अजमयेरु नगरे वैदिक मन्त्रालये मुद्रितः श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्द सरस्वतीस्वामिना निर्मितः 'अथ संस्कारविधिः' {संस्करण संवत् 2009 वि.} के जातकर्म प्रकरणम् में चार मन्त्रों से तीन समिदाधान का स्पष्ट उल्लेख है–'पृष्ठ 22 में लिखे प्रमाणे **'ओम् अयन्त इध्म.'** आदि मन्त्रों से वेदी में चन्दन की समिदाधान करे।

वैदिक नित्यकर्म विधिः {संस्करण 2004} प्रकाशकः वैदिक पुस्तकालय, दयानन्द आश्रम केसरगंज, अजमेर (राजस्थान) के प्रकाशकीय वक्तव्य में मन्त्री परोपकारिणी सभा ने पं. युधिष्ठर मीमांसक–वैदिक नित्यकर्मविधिः; पं. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार–संस्कार विधि की वैज्ञानिक व्याख्या; पं. विश्वश्रवा व्यास–यज्ञ पद्धति मीमांसा, पं. क्षेमकरण दास त्रिवेदी–अथ हवन मन्त्रा; स्वामी रामेश्वरानन्द जी सरस्वती–सन्ध्या भाष्य, यज्ञ पद्धति प्रकाश–प्रकाशक सार्वदेशिक सभा; स्वामी वेदानन्द–स्वाध्याय सन्दीप आदि सभी के प्रति आभार व्यक्त किया है।

वैदिक नित्य कर्म विधिः के इस पांचवें संस्करण के पृ.सं. 99 में समिदाधान विधि निम्न प्रकार सम्पादित है

"जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा पलाशादि की तीन समिधायें आठ–आठ अंगुल की घृत में डुबो नीचे लिखे 4 मन्त्रों से तीन समिधायें एक एक करके अग्नि में चढ़ायें।" (पहले मन्त्र से पहली, दूसरे और तीसरे मन्त्र से दूसरी और चौथे मन्त्र से तीसरी)–

महर्षि दयानन्द सरस्वती की कृति **संस्कार–विधिः** का सूक्ष्मता से अवलोकन करने पर विदित होता है कि वह अपने को पूर्वाचार्यों की भाँति किसी एक शाखा का अनुयायी होने तक सीमित नहीं रखना चाहते हैं। उन्होंने अपनी संस्कार–विधिः {आधुनिक गृह्यसूत्र} को चार वेद, उपवेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, आरण्यक, मनुस्मृति, चरक, सुश्रुत, वेदाङ्ग, उपाङ्ग, ऋग्वेद का आश्वलायन गृह्यसूत्र, यजुर्वेद का पारस्कर गृह्यसूत्र, सामवेद का गोभिल गृह्यसूत्र, अथर्ववेद का शौनक गृहासूत्र, तथा कात्यायन श्रौतसूत्र इत्यादि के आधार पर अपनी तर्क एवं ऊहा के द्वारा प्रणयन किया। महर्षि की विशिष्ट रचनाओं {संस्कार–विधिः, सत्यार्थ प्रकाश एवं ऋग्वेदादि भाय्यभूमिका} का अध्ययन करते समय विद्वानों को अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिये। मेरी समझ से महर्षि के ग्रन्थों में दोष निकालने का दुस्साहस किसी को नहीं करना चाहिये क्योंकि ऋषि दयानन्द कोई सामान्य आचार्य नहीं हैं। वह आप्त पुरुष हैं। आप्त पुरुषों का कथन तर्क एवं प्रमाणयुक्त होने से सर्वदा गृहणीय है।

(तत्कालीन) आर्य समाज शक्तिनगर
जनपद सोनभद्र– 231222
उत्तर प्रदेश

(वर्तमान) ए 10–02 एफ. एफ. बी.टीपी
सैक्टर–85
पार्क ईलाइट फ्लोर–II
ग्रेटर फरीदाबाद–121002
मो. 8851248736

☞ पृष्ठ 07 का शेष

लोभ, लालच न ...

हे राजन् ! सतयुग का अत्यन्त प्रसिद्ध राजा मान्धाता आज कहाँ चला गया ? जिस दशरथ नन्दन राम ने समुद्र पर पुल बाँधा था और रावण का वध किया था, वह राम आज कहाँ है ? अन्य भी अनेक युधिष्ठिर आदि बहुत से राजा इस पृथिवी पर राज्य करके विदा हो चुके हैं पर यह धन–धान्य से सम्पन्न भूमि किसी के साथ भी नहीं गई। परन्तु हे मुंज ! ऐसा लगता है कि तुम्हारे साथ यह ज़रूर जाएगी, तभी तो तू इसके लोभ में अन्धा हुआ–हुआ यह सब कुछ कर रहा है।

सारांश यह है कि मानव यह विचार करे, मानव यह सोचे–समझे कि उसे कभी भी इस धन के लोभ–लालच में नहीं पड़ना चाहिए क्योंकि यह सब धन–वैभव सदा सर्वदा किसी के साथ नहीं जाता। कई बार तो यह धन–वैभव जीवन काल में ही इस मनुष्य से चला जाता है अतः इस पर कभी भी अभिमान नहीं करना चाहिए और यदि यह जीवन भर भी हमारे पास रहे तो भी आखिर यह हमसे रह ही जाता है। यह धन–वैभव जो कभी हमारे दादा जी के पास था, वह दादा जी को छोड़कर पिता जी के पास आ गया, पिता जी के पास भी यह टिका नहीं रहा, अतः यह मेरे पास सरक आया। अब जो धन–वैभव, जो जमीन–जायदाद, जो पदार्थ समूह दादा जी और पिताजी के पास नहीं रहा उसके बारे में यह कैसे कहा जा सकता है कि वह सदा मेरे पास ही टिका रहेगा! अब जब मेरे ही धन–वैभव, स्त्री– पुत्र, मान–सम्मान की ही ऐसी अवस्था है कि न जाने कब यह मुझे छोड़कर चला जाए तो फिर अन्य के धन–वैभव की लालसा करने का क्या औचित्य रहेगा ?

इस प्रकार मन्त्र के आधार पर यह उचित है कि इस संसार में सर्वदा–सर्वत्र विराजमान रहने वाले प्रभु को व्यापक समझकर उसे ही सब धन–वैभव का स्वामी समझा जाए। हाँ ! जो भी उस के विधान के अनुसार अपने कर्मों के आधार पर हमें मिले उसी का ही हम सन्तोषपूर्वक ही नहीं वरन् त्यागपूर्वक उपभोग करें वा उसी का ही हम दानपूर्वक उपभोग करें, उसी का ही हम पंचमहायज्ञ पूर्वक सेवन करें। भूलकर भी दूसरों को जो उनके कर्मों के आधार पर उपलब्ध हो, उसकी मन से भी कभी हम लालसा न करें क्योंकि उस सब की लालसा के परिणामस्वरूप एक तो हम जहाँ अपने कर्मों के आधार पर उपलब्ध हुए धन–वैभव का सुख नहीं भोग सकते, दूसरा हम दूसरे के धन–वैभव को लोभ से देखते हैं तो फिर हममें ईर्ष्या– डाह भी उत्पन्न होती है और अगर हम इस राह पर और आगे बढ़ते हैं तो फिर हम लूट–पाट, चोरी–डाके आदि भी डाल सकते हैं। इतने पर भी हम वास्तव में वही भोग सकेंगे जो हमारे कर्मों के आधार पर हमें प्राप्त हुआ– हुआ होगा। इतने पर भी लोभ में आकर पाप करके भले ही हम उस धन–वैभव को पा लेवें पर तो भी ऐसा धन–वैभव तो फिर कष्ट और आपत्तियों का ही हमें शिकार बना देगा और फिर जब वह हम से पुनः छीना जाएगा या संसार में रहेगा तो कष्ट भी भारी ही होगा। हमें इस वेद वचन के आधार पर जहाँ अन्य के धन–धान्य का लोभ नहीं करना चाहिए वहाँ अपने पास विद्यमान धन–वैभव का भी स्वामी। मालिक नहीं बनना चाहिए वरन् उस में अपना पंचमहायज्ञ पूर्वक, दानपूर्वक सेवन, अधिकार समझ कर ही उसका सेवन करना चाहिए। ऐसा करके जहाँ हम इस लोक में सुख पाएँगे वहाँ मोक्ष में भी आनन्द पाएँगे।

'वैदिक रश्मियाँ' से साभार

पत्र/कविता

कुछ भविष्य का ध्यान करो

भूतकाल को रोने वालो !
वर्तमान को ढोने वालो !
ऐसे कब तक काम चलेगा कुछ भविष्य का ध्यान करो।
चाहो देश रह सके जीवित, अपना जीवन–दान करो।

बँटवारा जो करवाया है प्रकट उसी पर खेद करो।
जिस थाली में खाना खाते उसमें तो मत छेद करो।
अपने होकर गैरों जैसा मत निर्दय बर्ताव करो।
अपनी माता की छाती में नित्य नए मत घाव करो।
समय बड़ा नाजुक है भैया !
नचवा देगा ता–ता– थैया !
बनकर कृष्ण कन्हैया फिर कंसों पर शरसंधान करो।
चाहो देश रह सके जीवित, अपना जीवन दान करो।

औरंगज़ेब हुआ फिर जीवित 'राणा–शिव' तलाश करो।
आस्तीन के साँपों का तुम ज़रा नहीं विश्वास करो।
'राम–कृष्ण' के बेटो जागो पानी सर तक आ पहुँचा।
सोचो समझो सँभलो अब तो दुश्मन घर तक आ पहुँचा।
ओ कुर्सी के ठेकेदारो !
ओ शरीफ दिखते बटमारो !
ज्यादा ही चढ़ जाए न सिर पर इतना मत सम्मान करो।
चाहो देश रह सके जीवित, अपना जीवन दान करो।

भारत माँ का कभी खून से हो सकता श्रृंगार नहीं।
घावों को राहत शीतलता दे सकते अंगार नहीं।
पेट के लिए देश बेचकर कोई निशिदिन हँसता है।
केवल कुर्सी पूज रहे हैं ऐसी क्या परवशता है।
देश भक्त लगते गद्दारो !
अरे स्वस्थ लगते बीमारो !
धुंध बढ़ गई है मजहब की इसका तुरन्त निदान करो।
चाहो देश रह सके जीवित, अपना जीवन दान करो।

तुमको पाकिस्तान मिल गया हिन्दुस्तान हमारा है।
हिन्दुस्तान हिन्दुओं का है यही हमारा नारा है।
अपना व्रत है भारत को फिर 'हिन्दू राष्ट्र' बनाएँगे।
जाने कितने वीर हकीकत हँसकर शीश कटाएँगे।
नई चेतना आ जाएगी।
अन्धकार को खा जाएगी।
अपने हित के लिए 'मनीषी' नहीं राष्ट्र कुर्बान करो।
चाहो देश रह सके जीवित, अपना जीवन दान करो।

सारस्वत मोहन 'मनीषी'
ए–13–14 सेक्टर–11, रोहिणी दिल्ली – 110085
फोन नं.– 011–27572897

पाओना ब्रजवासी

पाओना ब्रजवासी वह वीर सपूत थे जिन्हें मणिपुर आज भी याद करता है। दरअसल प्रथम आंग्ल–वर्मा युद्ध में अंग्रेज़ों ने अपना राज्य हासिल करने में मणिपुर के राजकुमार गंभीर सिंह की मदद की थी। उसके बाद मणिपुर ब्रिटेन का संरक्षित राज्य बन गया था। वर्ष 1835 में अंग्रेजों ने मणिपुर में एक राजनैतिक एजेंट भी नियुक्त कर दिया। लेकिन 1890 में मणिपुर के महाराजा सूरचंद्र सिंह के दौर में उनके छोटे भाई और सेनापति टिकेन्द्रजीत सिंह से अंग्रेज़ों की ठन गई। ब्रिटिश सैनिकों ने 24 मार्च, 1891 को टिकेन्द्रजीत के महल पर हमला कर दिया। पर मणिपुरी सेना की जवाबी कार्यवाही में 5 अंग्रेज़ अधिकारी मारे गए। गुस्साए अंग्रेज़ों ने 31 मार्च, 1891 को मणिपुर पर हमला करने के लिए भारी भरकम फौज भेज दी थी। ब्रिटिश सेना ने मणिपुर की सेना को तीन तरफ से यानी म्यांमार, कोहिमा और सिलचर से घेर लिया। उत्तर में कोहिमा से आई अंग्रेज़ टुकड़ी का नेतृत्व ***मेजर जनरल एच. कॉलट*** पश्चिम में सिलचर की तरफ से ***कर्नल आरएचएफ रेनिक*** और दक्षिण में बर्मा (म्यांमार) की तरफ से ***ब्रिगेडियर जनरल टी. ग्राहम*** कर रहे थे। ब्रिटिशों की इसी सैन्य टुकड़ी को मणिपुरी सैनिकों के सबसे ताकतवर प्रतिरोध का सामना करना पड़ा, क्योंकि इसका नेतृत्व मेजर पाओना ब्रजवासी कर रहे थे।

वर्ष 1833 में जन्मे पाओना ब्रजवासी कम उम्र में राजा की सेना में शामिल हुए थे और 1891 में ही वे मेजर के रैंक तक पहुँचे थे। 23 अप्रैल की ग्राहम के नेतृत्व में ब्रिटिश सैनिकों ने खॉग्जाम नदी के पश्चिम में स्थित थौबाल गाँव को घेर लिया था, जहाँ अंग्रेज़ों से युद्ध करने के लिए पाओना व्रजवासी के नेतृत्व में 400 सैनिक थे। अंग्रेज़ सेना आकार में बड़ी थी और उसके शस्त्रास्त्र भी आधुनिक थे इसके बावजूद पाओना और चौग्था मिया ने बेहद आक्रमकता का परिचय देते हुए अनेक अंग्रेज़ सैनिकों को ढेर कर दिया। लेकिन 25 अप्रैल तक मणिपुरी सेना के पाँव उखड़ने लगे और एक–एक कर सैनिक मैदान में शहीद होने लगे। एक समय अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने वाले सिर्फ पाओना ही रह गए थे। उनकी बहादुरी देख ब्रिगेडियर ग्राहम बेहद प्रभावित हुए और उन्होंने शर्त रखी कि अगर पाओना ब्रिटिश सेना में शामिल हो जाते हैं तो उनकी जान बख्श दी जाएगी। पाओना ने वह प्रस्ताव खारिज कर अपने लिए मौत चुनी। गुस्साए शत्रु दल ने उनका सिर काट दिया।

खोंग्जाम का युद्ध एंग्लो–मणिपुर वार का अंतिम युद्ध था, जिसे भारतीय इतिहास के भीषण युद्धों में गिना जाता है। अंततः 27 अप्रैल, 1891 को अंग्रेज़ों को जीत हुई। तीनों ब्रिटिश टुकड़ियों ने मणिपुर पर कब्जा कर लिया और कांग्ला फोर्ट पर यूनियन जैक फहरा दिया गया। खोंग्जाम युद्ध में हार ने मणिपुरी समाज को झकझोर दिया था कि अपनी ही निर्बलता के कारण वह दासता के गहरे गड्ढे में गिर गया है। पाओना ब्रजवासी और बहादुर सैनिकों की याद में मणिपुर में हर साल 23 अप्रैल को खोंग्जाम दिवस मनाया जाता है। खोंग्जाम युद्ध की 125वीं वर्षी पर शहीद सैनिकों की स्मृति में इंफाल–मोरे राष्ट्रीय राजमार्ग पर एक खूबसूरत मेमोरियल बनाया गया, जिसका उद्घाटन पूर्व राष्ट्रपति स्व. प्रणव मुखर्जी ने किया था। यह थौबाल जिले के खेबाचिंग में स्थित है। यह भी एक अद्भुत संयोग है कि पाओना ब्रजवासी के डॉक्टर पड़पोते ने एक अंग्रेज़ महिला मिरांडा पाओनाम से शादी की है और वह मणिपुर में रहता है।

स्वामी गुरुकुलानन्द कच्चाहारी
'इतिहास के बिखरे पन्ने' से साभार

****

दण्डी स्वामी विरजानन्द जी ने अपने प्रतिभाशाली शिष्य 'स्वामी दयानन्द' से क्या-क्या अपेक्षाएँ की थीं?

डॉ. भवानीलाल भारतीय

दण्डी विरजानन्द की शून्य और निष्प्रभ आँखें उस दिन को देखने के लिए लालायित थीं जबकि देश में प्रचलित वैष्णव, शैव, शाक्त आदि विभिन्न सम्प्रदायों के बाह्याडम्बरों से,जन समाज प्रवंचित और प्रपीड़ित नहीं होगा।

वे उस घड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे जब विशुद्ध वैदिक धर्म अपनी दिव्य आभा का प्रसार कर जन साधारण के कल्याण का साधन बनेगा।

वे उस युग के आगमन की भी आशा रखते थे जब धर्म के नाम पर होने वाले पाखण्डों और अत्याचारों से मुक्त होकर इस देश के वासी वास्तविक स्वराज्य और सुराज्य का उपभोग कर सकेंगे।

इन स्वप्नों की पूर्ति के साथ–साथ वे संस्कृत के शास्त्रीय अध्ययन के क्षेत्र में एक मौलिक परिवर्तन लाना चाहते थे जिसके द्वारा ऋषिप्रणीत ग्रन्थों का प्रचार और मान्यता बढ़े और क्षुद्रमनस्क, संकीर्ण तथा साम्प्रदायिक भावापन्न लोगों द्वारा लिखे गए (दण्डीजी की दृष्टि में अनार्ष, सामान्य मनुष्य बुद्धि रचित) ग्रन्थों को निरुत्साहित किया जा सके।

स्वयं जर्जर, वयोवृद्ध तथा नेत्रहीन होने के कारण उन्हें यह तो आशा नहीं थी कि उनके जीवनकाल में ही यह सब हो जाएगा, अथवा वे स्वयं इस सम्बन्ध में कुछ उल्लेखनीय कार्य कर पाएँगे।

यों तो उनकी पाठशाला में अनेक विद्याव्यसनी छात्र आए और गए किन्तु जिस शिष्य ने अपने गुरु के आदर्शों और मान्यताओं को चरितार्थ करने के लिए वसुधामण्डल पर एक नवीन वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात किया, वह था दयानन्द सरस्वती।

प्रस्तुति : भावेश मेरजा

यज्ञ भजन और भावाभिव्यक्ति पूर्वक मनाई गई स्मृति शेष अर्जुन देव चड्ढा की प्रथम पुण्य तिथि

कोटा के प्रसिद्ध समाजसेवी स्व. अर्जुन देव चड्ढा का प्रथम पुण्य स्मरण, यज्ञ, भजन एवं भावाभिव्यक्ति के साथ मनाया गया। जिसमें मुख्य अतिथि कोटा दक्षिण के विधायक संदीप शर्मा, विशिष्ट अतिथि महामंडलेश्वर साध्वी हेमा जी सरस्वती एवं कबीर पारख संस्था के संत प्रभाकर देव साहिब विशिष्ट रहे। कार्यक्रम की अध्यक्षता आर्य उप प्रतिनिधि सभा कोटा संभाग के प्रधान अरविंद पांडेय ने की।

उपस्थित लोगों को विधायक संदीप शर्मा ने संबोधित किया। विधायक शर्मा ने कहा कि अर्जुनदेव चड्ढा ने लोगों की कठिनाई को समझा और उसे दूर करने के लिए वे हमेशा प्रयत्नशील रहे। महामंडलेश्वर साध्वी हेमा जी सरस्वती ने कहा कि आर्य समाज **कृण्वन्तो विश्वमार्यम्** के सिद्धांत पर चलते हुए श्रेष्ठ समाज के निर्माण पर बल देता है। उन्होंने कहा कि चड्ढा साहब ने आर्य समाज के माध्यम से सेवा कार्यों के द्वारा वेद के संदेश को जन–जन तक पहुँचाने का कार्य किया। संत श्री प्रभाकर देव साहब ने कहा कि अर्जुन देव चड्ढा ने कोटा में आर्य समाज के कार्यों को विस्तारित रूप दिया। अध्यक्ष श्री अरविंद पांडे ने कहा कि अर्जुन देव चड्ढा ने आर्य समाज के संदेश को जन–जन तक पहुँचाने के लिए सेवा कार्यों को एक माध्यम बनाया और उनका अनुसरण करते हुए वर्तमान में भी आर्य समाज द्वारा सेवा के कार्य चलाए जा रहे हैं। महामंत्री एडवोकेट चंद्र मोहन कुशवाहा ने स्मृति शेष अर्जुन देव चड्ढ़ा द्वारा किए गए सेवा कार्यों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया।

कार्यक्रम में नगर निगम कोटा के नेता प्रतिपक्ष विवेक राजवंशी पार्षद गोपाल मंडा ने अपनी भावांजलि प्रस्तुत की। श्री तुलसीदान, सुश्री स्नेह लता आर्या एवं पंडित भैरोलाल शर्मा द्वारा ईश्वर भक्ति के और सद्गुणों का बखान करने वाले प्रेरणादाई भजन प्रस्तुत किए गए। कृष्ण रोटेरी ब्लड बैंक समिति कोटा के सौजन्य से विशाल रक्तदान शिविर का आयोजन किया गया। जिसमें 54 सेवाभावी जनों द्वारा रक्तदान किया गया।

डीएवी मूनक (पंजाब) में मनाई गयी महात्मा हंसराज जयंती

महात्मा हंसराज जयंती (अप्रैल 19) के अवसर पर एक यज्ञ का आयोजन किया गया। इसमें विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री संजीव शर्मा, अध्यापकों एवं विद्यार्थियों ने भाग लिया। विद्यालय की। 1886 में लाहौर में खोली गयी यह संस्था, शिक्षा के क्षेत्र में एक बीज बोने के सामान था जो आज एक लहलहाता वृक्ष बन गया है जिस पर फल–फूल रूपी हजारों शिक्षण संस्थान (विश्व विद्यालय, महाविद्यालय, विद्यालय) भारत

के प्रधानाचार्य ने महात्मा हंसराज जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए बताया कि उन्होंने दयानंद एंग्लो वैदिक संस्था के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया एवं इसकी पहली संस्था में प्रधानाचार्य पद पर बिना वेतन लिए सारी उम्र सेवा एवं विदेशों में कार्यरत हैं और शिक्षा के प्रचार–प्रसार में महत्तवपूर्ण योगदान दे रहे हैं। उनके अनमोल योगदान एवं त्याग को याद कर उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित किये गए। अंत में शांति पाठ कर प्रसाद वितरित किया गया।

एल आर एस डी.ए.वी. अबोहर में आर्यसमाज स्थापना दिवस पर कार्यक्रम

एलआर एस डी.ए.वी. सीनियर सेकेंडरी मॉडल स्कूल अबोहर में आर्य समाज के 151वें स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में विशेष यज्ञ का आयोजन किया गया, जिसमें विद्यालय के वाइस नियम उत्तम जीवन जीने के तरीके हैं, हमें इन नियमों को आत्मसात कर के स्वामी दयानंद जी के सपनों को साकार करना है। उन्होंने आर्य समाज के बारे में बताते हुए कहा कि यह समाज श्रेष्ठ लोगों का एक समूह है जिसका मुख्य

प्रिंसिपल श्री सुमित फुटेला, श्रीमती अंजना सेतिया, श्रीमती अलका सतीजा, श्रीमती सरजू मिगलानी, श्रीमती सुनीता सचदेवा एवं कक्षा सातवीं के विद्यार्थी यजमान रहे। विद्यालय के धर्म शिक्षक श्री अशोक शास्त्री जी ने ओम के पवित्र उच्चारण से यज्ञ का शुभारंभ किया और बड़ी श्रद्धा से वेद मंत्रों का उच्चारण करके पवित्र अग्नि में आहुतियां अर्पित कीं।

विद्यालय के हिंदी विभाग की विभागाध्यक्षा श्रीमती अलका सतीजा ने आर्य समाज के नियमों की व्याख्या करते हुए बच्चों को बताया कि ये उद्देश्य सारे विश्व को श्रेष्ठ बनाना है। उन्होंने विद्यार्थियों को नमस्ते का अर्थ बताया और उन्हें वेदों के रास्ते पर चलते हुए हमेशा सत्य बोलने की प्रेरणा दी।

विद्यालय के संगीत अध्यापक श्री दिलीप माथुर जी ने अपनी टीम के साथ ***'धन्य है तुमको ऐ ऋषि, तूने हमें जगा दिया'*** भजन का गायन करके स्वामी दयानंद जी को सच्ची श्रद्धांजलि दी। सभी अध्यापकों ने स्वामी दयानंद जी की प्रतिमा पर अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किए। शांति पाठ के साथ इस कार्यक्रम का समापन हुआ।

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2024-25-26
Posted at L.P.C.(Delhi RMS)D110006 ON Wednesday & Thursday, 2025

हंसराज सैक्टर-6, पंचकूला में मनाया गया श्रमिक दिवस

हंसराज पब्लिक स्कूल, पंचकूला ने श्रम दिवस को गहन कृतज्ञता और श्रद्धा के साथ मनाया, जिसमें उन सहायक कर्मचारियों के अमूल्य योगदान को स्वीकार किया गया, जो हमारे दैनिक संचालन की रीढ़ हैं।

इस अवसर को चिह्नित करने के लिए एक पवित्र हवन का आयोजन किया गया, ताकि आशीर्वाद प्राप्त किया जा सके और समर्पण एवं विनम्रता से सेवा करने वालों के प्रति सामूहिक कृतज्ञता प्रकट की जा सके। छात्रों और सहायक कर्मचारियों के बीच एक संक्षिप्त किंतु सार्थक संवाद हुआ, जिसमें छात्रों ने उनके अनुभवों को सुना, उनके दैनिक जीवन को समझा और एक दयालु तथा सुचारु विद्यालय वातावरण के निर्माण में उनके योगदान को स्वीकार किया।

इस संवाद ने युवा मनों को सहानुभूति, विनम्रता और समाज में हर व्यक्ति के प्रति सम्मान के मूल्यों के प्रति संवेदनशील बनाया।

प्रधानाचार्या श्रीमती जया भारद्वाज ने अपने संबोधन में समुदाय के प्रत्येक सदस्य के योगदान को पहचानने और उसका सम्मान करने के महत्व पर बल दिया। उन्होंने कहा, "हमारे सहायक कर्मचारी केवल कार्यकर्ता नहीं हैं—वे हमारी शक्ति हैं, हमारे मौन सहयोगी हैं।"

कार्यक्रम का समापन छात्रों द्वारा सहायक कर्मचारियों को हस्तनिर्मित उपहार और हार्दिक संदेश भेंट करने के साथ हुआ, जिससे एकता, सम्मान और साझा जिम्मेदारी की भावना को और अधिक बल मिला।

बी.बी.के. डी.ए.वी. कॉलेज फॉर विमेन वाटर सस्टेनेबिलिटी अवार्ड 2025-26 से हुआ सम्मानित

बी.बी.के. डी.ए.वी. कॉलेज फॉर विमेन, अमृतसर को विश्व जल दिवस के अवसर पर, सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत पंजीकृत नेशनल एडू ट्रस्ट ऑफ इंडिया द्वारा वाटर सस्टेनेबिलिटी अवार्ड 2025–26 से सम्मानित किया गया। यह पुरस्कार जल संरक्षण को बढ़ावा देने और बेस्ट आउट ऑफ बेस्ट वाटर एक्शन रिसर्च प्लान की अगुवाई करने में दूरदर्शी नेतृत्व को मान्यता देता है, जो अभिनव जल–बचत और रीसाइक्लिंग प्रथाओं पर केंद्रित एक पहल है।

प्रिंसिपल डॉ पुष्पिंदर वालिया ने अपना आभार व्यक्त करते हुए, इस पुरस्कार को पूरे कॉलेज स्टाफ की कड़ी मेहनत और समर्पण को समर्पित किया। उन्होंने कहा कि जल हमारे ग्रह की जीवन रेखा है और इसे बचाना और संरक्षित करना हमारी सामूहिक जिम्मेदारी है। यह पुरस्कार स्थिरता के लिए संस्थान की प्रतिबद्धता की पुष्टि करता है, जो सभी को अभिनव जल संरक्षण प्रथाओं की दिशा में काम करना जारी रखने के लिए प्रेरित करता है।

जल संरक्षण के प्रतिनिधि के रूप में काम करने वाली दस छात्राओं को भी स्थिरता प्रयासों में उनकी सक्रिय भागीदारी के लिए प्रमाण पत्र से सम्मानित किया गया।

एनएसएस कार्यक्रम अधिकारियों को भी पर्यावरण संरक्षण और स्थिरता को बढ़ावा देने में उनके समर्पित प्रयासों के लिए प्रशंसा पत्र प्राप्त हुए।

नेशनल एडुट्रस्ट ऑफ इंडिया के सीईओ श्री समर्थ शर्मा ने अपने पाठ्यक्रम और संस्थागत प्रथाओं में स्थिरता को एकीकृत करने में एक उल्लेखनीय उदाहरण स्थापित करने के लिए बी बी के डी.ए.वी. कॉलेज फॉर विमेन की प्रशंसा की।

डी.ए.वी. धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश) में महात्मा हंसराज जन्मोत्सव

भागीरथी दास डीएवी पब्लिक स्कूल, धर्मशाला के प्रांगण में महात्मा हंसराज के जन्मदिवस पर विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन कर प्रधानाचार्य, शिक्षकों व बच्चों ने महात्मा हंसराज जी को श्रद्धा सुमन अर्पित किए। इस अवसर पर विशेष प्रार्थना सभा का आयोजन किया गया। कार्यक्रम का प्रारंभ वैदिक यज्ञ से किया गया जिसमें विभिन्न कक्षाओं के छात्र–छात्राओं ने मंत्रोच्चारण करते हुए आहुतियां दीं। कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य बच्चों को महात्मा हंसराज के जीवन से प्रेरित करवाना तथा बच्चों में अपनी संस्कृति के प्रति रूझान पैदा करना था। बच्चों ने इस अवसर पर विभिन्न गतिविधियों–जैसे कविता वाचन, स्लोगन लेखन, मंत्रोच्चारण, भाषण, भजन तथा नाटक आदि के माध्यम से अपने भावों की अभिव्यक्ति की। कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य महात्मा हंसराज जी के जीवन पर प्रकाश डालना, आर्यसमाज को महान विचारधारा व कार्य शैली पर प्रकाश डालना था बच्चों में स्वाध्याय की भावना, सच्चरित्र का निर्माण, नैतिक मूल्यों का समावेश हो सके।

स्कूल प्रधानाचार्य डॉ. विपिन जिष्टु ने बच्चों को संबोधित करते हुए अपने वक्तव्य में कहा कि महात्मा हंसराज एक महान आर्य समाज सुधारक तथा शिक्षाविद् थे। उन्होंने समाज सेवा को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। हमें उनके जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए। उन्होंने बच्चों को नैतिक तथा आध्यात्मिक रूप से एक आदर्श युवा आर्य बनने के बारे में ज्ञान दिया। कार्यक्रम का समापन शांति पाठ के द्वारा किया गया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **फर्स्ट इम्प्रैशन कार्पोरेट सर्विसिज, (प्रा.) लि.,** ई.113–114, सैक्टर–63, नोएडा, उ.प्र.–201301 (दूरभाष : 120–4246315) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**